सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज़

# डा० राम मनोहर लोहिया

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज़

# डा० राम मनोहर लोहिया

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

लो० स० स० (सु० सां० मो०)/1

© लोक सभा सचिवालय, 1990

मार्च, 1990

मूल्यः 30.00 रुपये

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम (सातवां संस्करण) के नियम 382 के अधीन तथा प्रबंधक, फोटो-लिथो विंग, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

# आमुख

भारतीय संसदीय ग्रुप का विचार राष्ट्रीय तथा संसदीय जीवन में सुविख्यात सांसदों के योगदान को स्वस्मरण करने हेतु उनकी वर्षगांठ मनाने का है और इस सिलसिले में 'सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज़' नामक नई सीरीज़ प्रकाशित करने का प्रस्ताव है।

सुविख्यात समाजवादी नेता तथा श्रेष्ठ सांसद, स्वर्गीय डा० राम मनोहर लोहिया की याद में 23 मार्च, 1990 को एक समारोह का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर के उपलक्ष में समारोहों के भाग के रूप में यह मोनोग्राफ हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित किया जा रहा है।

इस मोनोग्राफ के तीन भाग हैं। भाग एक में डा० राम मनोहर लोहिया की संक्षिप्त जीवन-झांकी है जिसमें उनके घटना-प्रधान जीवन की कुछ झलकियां दी गई हैं। भाग दो में तीन लेख हैं—पहला लेख उत्तर प्रदेश के राज्यपाल तथा डा० लोहिया के निकट सहयोगी श्री बी० सत्यनारायण रेड्डी का है, दूसरा भूतपूर्व संसद सदस्य तथा डा० लोहिया के सहयोगी श्री सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी का है तथा तीसरा लेख विख्यात पत्रकार श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी का है जिन्होंने संसद की कार्यवाही की रिपोर्ट समाचार-पत्रों को देने के दौरान डा० लोहिया को बहुत नजदीक से देखा था। ये बहुमूल्य लेख भेजने के लिए हम उनके आभारी हैं। डा० लोहिया के अन्य समकालीन सहयोगियों से भी डा० लोहिया के बारे में अपने संस्मरण भेजने का अनुरोध किया गया है, और ये संस्मरण प्राप्त होने पर इस मोनोग्राफ का एक पुस्तक के रूप में बृहत् संस्करण प्रकाशित करना संभव हो सकेगा।

भाग तीन में डा० लोहिया के कुछ चुनीदा भाषणों के अंश उद्धृत किये गये हैं। उन्होंने ये भाषण संसद सदस्य के अपने कार्यकाल में देश की विभिन्न समस्याओं और मुद्दों पर हुई बहस में भाग लेते हुए हिन्दी में दिए थे। इन भाषणों का अंग्रेजी अनुवाद करते समय इस बात का पूरा प्रयास किया गया है कि जहां तक संभव हो, उनकी बेजोड़ शैली का तीखापन बना रहे। डा० लोहिया के अन्य भाषण बाद में प्रकाशित किये जाने वाले संशोधित संस्करण में शामिल करने का प्रस्ताव है।

उनकी वर्षगांठ के अवसर पर हम डा० राम मनोहर लोहिया की याद में सादर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। आशा है कि यह मोनोग्राफ पाठकों के लिए रुचिकर और उपयोगी सिद्ध होगा।

सुभाष काश्यप,
महासचिव, लोक सभा तथा
महासचिव,
भारतीय संसदीय ग्रुप।

नई दिल्ली;
16 मार्च, 1990

# विषय-सूची


**भाग एक**
जीवन-वृत्त

1
डा० राम मनोहर लोहिया
जीवन-झांकी
(3)

**भाग दो**
लेख

2
डा० राम मनोहर लोहिया और समाजवाद
बी० सत्यनारायण रेड्डी
(15)

3
डा० राम मनोहर लोहिया—एक महान समाजवादी
सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी
(20)

4
डा० राम मनोहर लोहिया—एक क्रांतिकारी
जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी
(23)

## भाग तीन

## जीवन-दर्शन

(लोक सभा में डा० राम मनोहर लोहिया द्वारा दिये गये कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धृत अंश)

(31)

5

राष्ट्रीय आय का वितरण

(33)

6

सरकारी उपक्रम समिति सम्बन्धी प्रस्ताव

(40)

7

तृतीय पंचवर्षीय योजना के मध्यावधि मूल्यांकन संबंधी प्रतिवेदन

(47)

8

निवारक नजरबंदी (जारी रखना) विधेयक

(57)

9

भ्रष्टाचार

(63)

10

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का उत्थान

(72)

11

"भारतीय इतिहास" की आलोचना

(75)

12
पंजाब राज्य का पुनर्गठन
(81)

13
व्यक्तिगत मासिक व्यय की सीमा निर्धारित करने हेतु समिति की नियुक्ति के बारे में प्रस्ताव
(85)

# भाग एक

# जीवन वृत्त

# 1

# डा० राम मनोहर लोहिया : जीवन-झांकी

सुविख्यात समाजवादी डा० राम मनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 को उत्तर प्रदेश के फैज़ाबाद जिले में अकबरपुर में हुआ था। उनके पिता श्री हीरा लाल लोहिया एक व्यापारी थे। मूलतः उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर के निवासी थे। "लोहिया" उपनाम उनके परिवार द्वारा पीढ़ियों से लोहे का व्यापार करने के कारण, पड़ा। लोहिया जी जब ढाई वर्ष के ही थे, तभी उनकी माता जी का देहान्त हो गया था। अतः उनका लालन-पालन उनकी दादी तथा चाची द्वारा किया गया।

बचपन में लोहियाजी को अपने परिवार में ऐसा वातावरण मिला, जो जातीय तथा साम्प्रदायिक भावनाओं से अछूता था। उनको देशभक्ति की प्रबल भावना उनके पिता की देन थी, जो एक सक्रिय कांग्रेसी थे तथा गांधी जी के पक्के अनुयायी थे। बचपन से ही लोहियाजी को जरूरतमंदों के प्रति पूरी सहानुभूति थी और इसीलिये वह हमेशा गरीबों तथा दलितों की सहायता करने के लिए तत्पर रहते थे।

## शिक्षा

उनकी प्रारंभिक शिक्षा अकबरपुर में टंडन पाठशाला और विश्वेश्वर नाथ हाई स्कूल में हुई। वह अपनी कक्षा में बराबर प्रथम आते रहे और अपने शिक्षकों के प्रिय छात्र बने रहे। पिता के अकबरपुर से बम्बई चले जाने पर उन्होंने अपनी शिक्षा बम्बई के मारवाड़ी स्कूल में जारी रखी और 1925 में मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। उनकी इन्टरमीडिएट शिक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई। वर्ष 1926 में जब वह केवल 16 वर्ष के ही थे, उन्होंने गौहाटी में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया था। वर्ष 1927 में उन्होंने इन्टर की परीक्षा पास की और वह आगे पढ़ाई के लिए कलकत्ता चले गये। यहां उनके जीवन में घटी एक घटना उल्लेखनीय है। उस समय कलकत्ता में दो सरकारी कालेज थे जिनका काफी नाम था। इनके अलावा वहां विद्यासागर कालेज नामक एक गैर-सरकारी कालेज भी था। उस कालेज के शिक्षक राष्ट्रीय विचारधारा के थे। जब कालेज में दाखिले का प्रश्न उनके समक्ष आया तो लोहियाजी ने एक सच्चे राष्ट्रवादी होने के नाते, उच्च शिक्षा के लिए उक्त दोनों सरकारी कालेजों में से किसी में दाखिला न लेकर विद्यासागर कालेज में दाखिला लेना पसन्द किया। वर्ष 1929 में उन्होंने बी०ए० की परीक्षा पास की और इसके तीन वर्ष पश्चात्

1932 में बर्लिन विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी०एच०डी० की डिग्री प्राप्त की; उनके शोध-प्रबंध का विषय "साल्ट एन्ड सिविल डिसओबीडिएन्स" था। बर्लिन में ही उन्होंने मार्क्स तथा हीगेल की कृतियों का अध्ययन किया। समाजवाद के प्रति निश्चित झुकाव के साथ उन्होंने बर्लिन छोड़ा। लोहियाजी गांधीजी के आदर्शों, मूल्यों तथा तरीकों से भी बहुत प्रभावित थे।

डा० लोहिया की बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययन की अवधि उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण दौर था। लोहियाजी अपने बाल्यकाल से ही एक अच्छे वक्ता थे। विश्वविद्यालय में एक मेधावी बुद्धिजीवी के रूप में उन्होंने भाषण देने की अपनी एक अलग शैली विकसित की, जो बहुत ही तर्कसंगत होती थी और श्रोताओं को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। उन दिनों यह विश्वविद्यालय, जो उस समय "काशी विश्वविद्यालय" के नाम से जाना जाता था, ऐसे मेधावी युवकों को तैयार करने के लिए सुविख्यात था जो देश का नाम उज्ज्वल कर सकते थे और उसके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकते थे। लोहियाजी उनमें से एक थे।

## एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में

लोहियाजी जब बहुत छोटे थे, तभी स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़े। घर में मिले माहौल के कारण राजनीति में उनकी रुचि और बढ़ गई। उनके पिता 1918 में अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए उन्हें अपने साथ ले गये। जब वे मात्र दस वर्ष के थे, तभी उन्होंने लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर सन् 1920 में छात्रों की एक हड़ताल कराई थी। महान स्वतंत्रता सेनानी लोहियाजी ने गांधीजी द्वारा शुरू किये गये असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। 1928 में उन्होंने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने के लिए कलकत्ता में आयोजित एक बैठक की अध्यक्षता भी की थी। लोहियाजी कलकत्ता में आयोजित एक युवा अधिवेशन में पंडित नेहरू के सम्पर्क में आये और दोनों में घनिष्ठ संबंध स्थापित हुए।

1933 में डा० लोहिया के बर्लिन से वापस लौटने पर कांग्रेस पार्टी में एक ऐतिहासिक घटना घटी, जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अन्दर ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ। इसकी स्थापना में डा० लोहिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, जिन्हें इस पार्टी का एक आधार-स्तम्भ माना गया। इस पार्टी ने समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित करते हुए कहा कि केवल मार्क्सवाद ही साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का मार्गदर्शन कर सकता है और उन्हें अपनी मंजिल तक पहुंचा सकता है। पार्टी ने इस बात पर भी बल दिया कि कांग्रेस के संगठनात्मक ढांचे का लोकतंत्रीकरण किया जाये।

1936 में युवा लोहियाजी को कांग्रेस पार्टी के विदेश विभाग का सचिव बनाया गया तथा इस पद पर उन्होंने उल्लेखनीय योग्यता के साथ अगस्त, 1938 तक कार्य किया। कांग्रेस पार्टी के विदेशी मामलों के सचिव के रूप में लोहियाजी ने भारत की विदेश नीति का आधार तैयार करने में मुख्य भूमिका निभायी। उन्होंने उस समय विश्व के दूसरे भागों में चल रहे स्वतंत्रता आन्दोलनों के साथ निकट सम्पर्क बनाये रखा तथा एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका में प्रगतिशील संगठनों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किये। सचिव के रूप में उन्होंने "दि फारेन पालिसीज़ आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस एण्ड दि ब्रिटिश लेबर पार्टी" (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और ब्रिटिश लेबर पार्टी की विदेश नीतियाँ) नामक एक लेख लिखा, जिसे पंडित नेहरू ने 'उत्कृष्ट कृति' बताया।

लोहियाजी विदेशों में रहने वाले भारतीयों की समस्याओं से अवगत थे तथा उन्होंने भारत की जनता को उनकी दयनीय दशा के बारे में बताया। उन्होंने विश्व का ध्यान भारत में तथा अन्य देशों में किये जा रहे नागरिक स्वतंत्रताओं के दमन की ओर भी दिलाया। 24 मई, 1939 को उन्हें पहली बार, सरकार विरोधी भाषण देने के कारण, गिरफ्तार किया गया और जेल भेजा गया लेकिन अगले ही दिन जमानत पर रिहा कर दिया गया। उनका विचार था कि देश को आजादी अपने आप नहीं मिल जायेगी। उन्होंने लेख लिखकर तथा पैम्फलेट निकाल कर लोगों में जागरूकता पैदा की।

वे इस मत के समर्थक थे कि भारत को द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अंग्रेजों को कोई सहयोग नहीं देना चाहिए तथा उन्होंने पूर्ण असहयोग की वकालत की। उन्होंने कहा कि तत्कालीन सरकार को जन-धन का सहयोग नहीं दिया जाना चाहिए। जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने 1939 में युद्ध में ब्रिटेन की सहायता करने का संकल्प पारित किया तो लोहिया जी ने उसका विरोध किया तथा "डाउन विद आर्मामैंट्स" शीर्षक से एक लेख लिखा। 1940 में उन्हें युद्ध विरोधी भाषण देने के कारण गिरफ्तार किया गया। महात्मा गांधी ने इसे पसन्द नहीं किया और इस पर कटु प्रतिक्रिया व्यक्त की। इसकी भर्त्सना करते हुए गांधीजी ने कहा कि राम मनोहर लोहिया तथा जय प्रकाश नारायण जैसे देशभक्तों को जेल में बंद करना सहन नहीं किया जायेगा और वे सार्वजनिक स्वातंत्र्य में इस बढ़ते हुए हस्तक्षेप के मूक दर्शक नहीं बने रहेंगे। 1940 में गांधीजी द्वारा आरम्भ किये गये व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन का उद्देश्य जनता के लोकतांत्रिक स्वातंत्र्य के अधिकार पर जोर देना था।

डा॰ लोहिया ने 1942 के "भारत छोड़ो आन्दोलन" में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उन्होंने भूमिगत रहकर इस आंन्दोलन का संचालन किया तथा लगभग दो वर्ष तक पकड़े

नहीं जा सके। उन्होंने भूमिगत रेडियो स्टेशन भी स्थापित किया। उन्होंने अपने समय का सदुपयोग लघु पुस्तिकायें, पैम्फलेट और "हाउ टू एस्टेब्लिश एन इन्डिपेंडेंट गवर्नमैंट?", "आई एम फ्री", "प्रिपेयर फार दि रिवोल्यूशन", और "ब्रेव फाइटर्स मार्च फारवर्ड" जैसे प्रेरणादायक लेख लिखकर किया। इस अवधि में उन्होंने "डू ऑर डाई" (करो या मरो) नामक पत्रिका भी प्रकाशित की। भूमिगत रहते हुए उन्होंने एक अन्य विद्वतापूर्ण लेख "इकनामिक्स आफ्टर मार्क्स" भी लिखा। लेकिन 20 मई, 1944 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 11 अप्रैल, 1946 तक उन्हें जेल में रखा गया। बाद में उन्होंने गोवा और नेपाल के लोगों की स्वतंत्रता के लिये भी कार्य किया।

डा० लोहिया को भारत, गोवा और नेपाल के स्वतंत्रता आन्दोलनों में तथा स्वतंत्र भारत और अमेरिका में अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के कारण 25 बार गिरफ्तार किया गया।

**समाजवादी के रूप में**

1947 में कानपुर में हुए एक सम्मेलन में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नाम से कांग्रेस शब्द हटाकर दल का नाम सोशलिस्ट पार्टी रख दिया गया यद्यपि यह कांग्रेस का ही अंग बनी रही। 1948 में, डा० लोहिया द्वारा स्थापित सोशलिस्ट पार्टी ने स्वयं को कांग्रेस से अलग कर लिया। 1952 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ और 1953 में डा० लोहिया इसके महासचिव चुने गये। 1955 में समाजवादियों ने हैदराबाद में एक बैठक की तथा डा० लोहिया के सभापतित्व में एक नई सोशलिस्ट पार्टी आफ इंडिया का गठन किया गया।

डा० लोहिया एक महान समाजवादी थे तथा वह जनतांत्रिक समाजवाद की विचारधारा में विश्वास करते थे और सदैव जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को संसदीय साधनों द्वारा सत्ता दिये जाने के पक्षधर थे, लेकिन वह सभी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अन्याय के विरुद्ध अहिंसक सीधी कार्यवाही के समर्थक थे। उनका सृजनात्मक मस्तिष्क नये विचारों की खान था तथा वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा वैचारिक समस्याओं के प्रति अव्यवहारिक रवैये के एकदम विरुद्ध थे। वह सभी प्रकार के अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले अनथक योद्धा थे तथा उन्होंने समाज के दलित वर्गों को सामाजिक समानता तथा तरजीही अवसर प्रदान करने की पुरजोर वकालत की ताकि वे सदियों से चले आ रहे कष्टों से छुटकारा पा सकें।

डा० लोहिया बुराई का विरोध करने पर बहुत बल देते थे और वह रचनात्मक कार्य के महत्व को भी समझते थे। उनका विचार था कि राजनीति को सत्ता से अलग नहीं किया जा सकता। वह इस विचार के समर्थक थे कि राज सत्ता का नियंत्रण तथा मार्गदर्शन जन

शक्ति द्वारा किया जाना चाहिए। देश में सामाजिक क्रांति लाने के लिए उन्होंने जेल, कुदाल तथा वोट के सम्मिलित सूत्र का प्रतिपादन किया। उन्होंने देश के पुनर्निर्माण हेतु युवाओं द्वारा बिना पारिश्रमिक लिये एक घंटे का स्वैच्छिक श्रमदान किये जाने का आह्वान किया।

भारतीय शासन व्यवस्था में उनका मुख्य योगदान गांधीवादी विचारों को समाजवादी विचारधारा में समाविष्ट करना था। विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था में दृढ़ विश्वास रखने वाले लोहियाजी ने कुटीर उद्योगों की स्थापना तथा छोटी मशीनें लगाने की आवश्यकता पर बल दिया जिनमें कम से कम पूंजी निवेश हो तथा अधिक से अधिक जनशक्ति का उपयोग हो सके।

लोहियाजी इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि देश के लोग गांवों में रहते हैं। इसलिए वह गरीब किसानों, भूमिहीनों तथा खेतिहर मजदूरों की आकांक्षाओं के प्रतीक बन गये। वर्ष 1947 से ही उन्होंने 'किसान मार्च' का आयोजन तथा उनके लिए संघर्ष करना आरम्भ कर दिया था। वह उन महान नेताओं में से थे, जिन्होंने न केवल हमारे सामाजिक संबंधों की आमूल पुनर्व्यवस्था करने की आवश्यकता की वकालत की बल्कि क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए वैचारिक आधार भी प्रदान किया। वह सदैव साम्राज्यवाद तथा उपनिवेश-वाद के विरुद्ध क्रांति के हामी थे। अमरीकी सरकार ने 1964 में उन्हें नीग्रो लोगों के समान अधिकार सम्बन्धी आन्दोलनों में भाग लेने के सिलसिले में गिरफ्तार किया था।

सामाजिक समता के अथक हिमायती के रूप में उन्होंने जन्म के आधार पर जाति प्रथा तथा परम्परागत व्यवस्था की निन्दा की तथा उनकी मान्यता थी कि यह राष्ट्र के पतन तथा इस पर बार-बार बाहरी आक्रमण व विदेशी शासन का शिकार होने का अकेला सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण था। उन्होंने 'डेस्ट्राय कास्ट' (जाति प्रथा नाश) आन्दोलन भी चलाया था। उन्होंने कहा था कि परम्परागत विषम समाज में सभी को बराबर अवसर प्रदान करने मात्र से समता स्थापित नहीं की जा सकती। उन्होंने यह भी कहा कि पिछड़े वर्गों महिलाओं, हरिजनों, आदिवासियों तथा अविकसित अल्पसंख्यकों को उन्नत वर्गों के स्तर तक लाने के लिए विशेष अवसर देने होंगे।

डा० लोहिया का दृष्टिकोण विश्वव्यापी था। वह राष्ट्रीयता या नस्ल के बंधन से मुक्त मन की नागरिकता तथा वैचारिक नागरिकता के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। डा० लोहिया ने देश-विदेश का काफी भ्रमण किया था और उनका स्वप्न था कि एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था हो जिसमें व्यक्ति विश्व में कहीं भी बिना पासपोर्ट या वीसा के यात्रा कर सके।

वह ऐसी विश्व संसद तथा विश्व सरकार के पक्ष में थे जिसमें प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र अपनी प्रभुसत्ता का एक भाग स्वेच्छा से हस्तांतरित करे। वह 1949 में विश्व सरकार के लिए हुए सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि भी निर्वाचित हुए।

क्रांति के बारे में लोहियाजी के अपने विचार थे। निम्नलिखित स्थितियों में उन्होंने क्रांति को उचित ठहराया :(1) नर और नारी में पूर्ण समानता स्थापित करने के लिए क्रांति; (2) चमड़ी के रंग पर आधारित आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक असमानताओं के विरुद्ध क्रांति; (3) जन्म के आधार पर जाति प्रथा के विरुद्ध और पिछड़ों को विशेष अवसर देने के लिए क्रांति; (4) विदेशी दासता से मुक्ति, स्वतंत्रता और जनतांत्रिक सरकार की स्थापना के लिए क्रांति; (5) पूंजी संचय में व्याप्त असमानता को दूर करने, आर्थिक समानता लाने एवं नियोजित ढंग से उत्पादन में वृद्धि के लिए क्रांति; (6) निजी जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप को रोकने और लोकतांत्रिक शासन प्रणाली स्थापित करने के लिये क्रांति; और (7) परम्परागत तथा परमाणु अस्त्र-शस्त्रों के विरुद्ध तथा सत्याग्रह को अचूक हथियार के रूप में स्वीकृति दिलवाने के लिए क्रांति।

## जननायक के रूप में

लोहियाजी की महानता उनकी सादगी और उनके दिल में अपने देशवासियों के लिए व्याप्त असीम प्यार से झलकती थी। वह उनके सुख-दुख में बराबर के साझीदार थे। उनमें श्रद्धा, प्रेम, विनम्रता, क्रोध और सहनशीलता जैसी मानवीय भावनाओं का आदर्श संगम था। वह एक जुझारू क्रांतिकारी और गतिशील राजनैतिक तथा आर्थिक विचारों के प्रतिपादक थे। वह जननायक थे और सदैव उन्हीं की भाषा में बोलते थे। उनके तूफानी भाषणों की गूंज से न केवल लोक सभा गुंजायमान होती थी, जहां वह तत्कालीन सरकार की नीतियों की धज्जियां उड़ाते थे, बल्कि तीस वर्षों से भी अधिक समय तक राष्ट्रीय जीवन के व्यापक क्षेत्र को भी प्रभावित करते रहे।

सच्चे राष्ट्रवादी होने के नाते वह देश के नवयुवकों तथा नवयुवतियों द्वारा पाश्चात्य जीवन-शैली की नकल करने के विरुद्ध थे। वह भारतीय सभ्यता के पक्के समर्थक थे। वह चाहते थे कि अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी राष्ट्रीय भाषा के रूप में फले-फूले और अंग्रेजी यहां से चली जाए। अंग्रेजी के प्रति मोह को उन्होंने 'पापमय जीवन' की संज्ञा दी थी।

गांधीजी की तरह लोहियाजी ने दमनकारी तथा क्रूर कानूनों के प्रति अपनी अवज्ञा की भावना का परिचय दिया था। उनके लिए इस प्रकार के कानूनों की विद्यमानता ही असहनीय था। डा० लोहिया निजी रूप से भारत के विभाजन के विरुद्ध थे। वह

हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर समर्थक थे और भारत के स्वतंत्र होने पर तथा देश का विभाजन होने के बाद उन्होंने देश के विभिन्न भागों में एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखने के लिए निडरता से अनथक प्रयास किया।

## लेखक के रूप में

लोहियाजी लेखनी के धनी थे। उनके विचार मौलिक थे और वह सदैव जनमानस में जागरूकता पैदा करते थे। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान उन्होंने लोगों को अपने लेखों के माध्यम से स्वतंत्रता का मार्ग दिखाया और उनके विचार जनमानस पर एक अमिट छाप छोड़ गए। उनकी कृतियों में से कुछ ये हैं: 'मिस्ट्री आफ सर स्टफोर्ड क्रिप्स', 'आस्पेक्ट्स आफ सोशलिस्ट पालिसी', 'इतिहास चक्र', 'विल पावर एंड अदर राइटिंग्स', 'भारत विभाजन के गुनहगार', 'मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म', 'इंडिया, चाइना एण्ड नादर्न फ्रंटियर्स', 'जाति प्रथा', 'फ्रैगमेंट्स आफ ए वर्ल्ड माइंड', 'भाषा', 'नोट्स एण्ड कमेंट्स', 'इंटरवल इयूरिंग पालिटिक्स', 'फारेन पालिसी', 'कृष्ण, बाल्मीकि और वशिष्ठ', 'क्रांति के लिए संगठन', 'दी इंडियन एग्रीकल्चर', 'सोशलिज्म', 'हिन्दुइज्म', 'भारत और पाकिस्तान', 'हिंदू और मुसलमान', 'समाजवादी एकता', 'निराशा के कर्त्तव्य', 'क्रांतिकरण', 'सरकारी', 'मठ और कुजात गांधीवादी'। वह 'मैनकाइंड' और 'जन' के सम्पादक मंडल के अध्यक्ष भी थे।

## नए सिद्धान्तों के प्रतिपादक

मौलिक चिन्तक के रूप में उन्होंने निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किए: पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद की द्वैत उत्पत्ति; छोटी मशीनों वाली ईकाइयां; समान अप्रासंगिकता; तीसरा कैंप; तात्कालिता; वर्ग तथा जाति के बीच भटकाव; कार्यकुशलता, सम्पूर्ण या अधिकतम; मानवता का भौतिक तथा सांस्कृतिक सन्निकरण; निरन्तर सिविल नाफरमानी; सन्निकरण के साथ सह-अस्तित्व; सामान्य तथा आर्थिक उद्देश्यों और आत्मा एवं पदार्थ के स्वायत्त सम्बन्ध; आन्तरिक विद्रोह और बाहरी आक्रमण के बीच विपर्यास सम्बन्ध; समान अवसर के स्थान पर पिछड़े वर्गों के लिए तरजीही तथा सात क्रांतियां।

## सांसद के रूप में

डा॰ लोहिया 1963 में तीसरी लोक सभा के लिए उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद संसदीय क्षेत्र से उप चुनाव में निर्वाचित हुए। उन्होंने 13 अगस्त, 1963 को सदस्यता की शपथ ग्रहण की। पहले ही दिन जब लोहियाजी लोक सभा में आए तो ऐसा लगा कि सदन में नवजीवन का संचार हुआ हो। जब उन्होंने सभा-भवन में प्रवेश किया, तो सदन में सभी सदस्यों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। पहली बार लोक सभा सदस्य बनने पर उनका

दिल्ली के रामलीला मैदान में नागरिक अभिनन्दन किया गया था। मार्च, 1967 में वह उत्तर प्रदेश के कन्नौज संसदीय क्षेत्र से चौथी लोक सभा के लिए फिर चुने गये।

लोहियाजी एक समर्पित सांसद थे और उन्होंने सदन की कार्यवाही में बहुत रुचि ली। वह संसदीय वाद-विवाद तथा चर्चाओं के लिए पूरी तरह तैयार होकर आते थे। लोक सभा में उनके भाषणों ने भारतीय राजनीति को नया मोड़ दिया और सोच-विचार के लिए ठोस सामग्री प्रदान की। चाहे गुट-निरपेक्ष नीति हो या देश में भ्रष्टाचार का मामला, लोहियाजी तत्कालीन सरकार को हमेशा आड़े हाथों लेते थे। सदन में अपने भाषणों के माध्यम से वह सरकारी नीतियों की त्रुटियों को उजागर करते थे। चाहे प्रधान मंत्री हो या अन्य कोई मंत्री, वे किसी को बख्शते नहीं थे। जब भी वह कोई अनियमितता या अन्याय होता देखते, तो तुरन्त उस मुद्दे को उठाने के लिए तत्पर रहते थे।

'तीन आने बनाम पन्द्रह आने' नामक वाद-विवाद में उनके तर्क देश की जनता को चौंका देने वाले थे। लोहियाजी ने दृढ़तापूर्वक कहा कि तत्कालीन सरकार का यह कथन कि देश में प्रति व्यक्ति आय पन्द्रह आने है, गुमराह करने वाला तथा मिथ्या है। उन्होंने तथ्य तथा आकंड़े प्रस्तुत करके साबित किया कि उस समय प्रति व्यक्ति आय साढ़े तीन आने या चार आने प्रतिदिन थी। उनसे प्रेरणा पाकर 13 मार्च, 1964 को दिल्ली में उनके नेतृत्व में 'जनवाणी दिवस' मनाया गया।

यह वास्तव में बड़े दुखः की बात है कि लोहियाजी का जीवनकाल बहुत कम रहा। मौलिक विचारक, अद्वितीय नेता, विख्यात सांसद और विद्रोही डा० लोहिया 12 अक्तूबर, 1967 को नई दिल्ली में 57 वर्ष की अल्पायु में चल बसे। उनके निधन की खबर जंगल की आग की तरह पूरे देश में फैल गई और पूरा देश शोक में डूब गया।

संसद के दोनों सदनों में लोहियाजी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई। उनके निधन को देश तथा संसद के लिए एक महान क्षति बताया गया। उन्हें सच्चे अर्थों में एक बहादुर योद्धा, महान विचारक और ओजस्वी व्यक्ति की संज्ञा दी गई।

उनकी मृत्यु को असामयिक बताते हुए तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष डा० एन० संजीव रेड्डी ने कहा था कि उनकी मौत से भारतीय राजनीति तथा सदन से एक उत्कृष्ट नेता उठ गया है। तत्कालीन प्रधान मंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी ने लोहियाजी को एक अग्रणी सांसद बताते हुए कहा कि उनके असामयिक निधन से देश ने एक ओजस्वी और प्रतिभाशाली व्यक्ति खो दिया है। उनके शब्दों में लोहियाजी का सारा जीवन दलितों और शोषित लोगों के हितों के लिए, जो उन्हें प्रिय थे, एक संघर्ष था।

यद्यपि वह राज्य सभा के कभी सदस्य नहीं रहे, फिर भी उस सदन ने भी उन्हें मार्मिक

श्रद्धांजलि अर्पित की। राज्य सभा के तत्कालीन सभापति स्वर्गीय श्री वी० वी० गिरि ने उन्हें देश में समाजवादी आन्दोलन का संस्थापक बताया और कहा कि लोक सभा के सदस्य की हैसियत से श्री लोहिया ने 'एक जोशीला वक्ता और उत्कृष्ट संसदविद् होने के नाते चिरस्थायी कीर्ति अर्जित की'। उन्होंने आगे कहा 'यद्यपि डा० लोहिया सरकार की नीतियों की प्रायः पुरजोर आलोचना करते थे परन्तु उनकी नीयत और ईमानदारी पर कभी शंका नहीं हुई, उनके मन में हमेशा लोगों की भलाई ही रहा करती थी'।

डा० लोहिया अविवाहित थे। उन्होंने अपने पीछे न कोई परिवार और न ही कोई सम्पत्ति छोड़ी। यह केवल अपने महान आदर्श अपने पीछे छोड़ गए।

# सन्दर्भ स्रोत


1. अरुमुगन, एम०: सोशल थौट इन इंडिया, नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, 1978.
2. कौशिक, करुणा: रशियन रेवोल्यूशन एण्ड इंडियन नेशनलिज्म, दिल्ली, चाणक्य पब्लिकेशन्स, 1984.
3. परमेश्वरन, पी० (सं०): गांधी, लोहिया एण्ड दीनदयाल, नई दिल्ली, दीनदयाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1978.
4. सेन, एस० पी० (सं०): डिक्शनरी आफ नेशनल बायोग्राफीज, खण्ड-2, कलकत्ता, इंस्टीट्यूट आफ हिस्टोरिकल स्टडीज, 1973.
5. शरद, ओंकार: लोहिया: ए बायोग्राफी, लखनऊ, प्रकाशन केन्द्र, 1972.
6. विष्णु भगवान: इंडियन पोलिटिकल थिंकर्स, दिल्ली, आत्माराम एण्ड सन्ज, 1976.
7. 'हूज़ हू, फोर्थ लोक सभा', 1967.

भाग दो

# लेख

2

# डा० राम मनोहर लोहिया और समाजवाद

— बी० सत्यनारायण रेड्डी*

डा० राम मनोहर लोहिया हिन्दुस्तान की आज़ादी और समाजवादी आन्दोलन के महान व्यक्तियों में प्रमुख हैं। वह दलितों, पीड़ितों तथा शोषितों के मसीहा तथा किसानों, मजदूरों और महिलाओं के शुभ-चिन्तक के रूप में सदैव प्रसिद्ध रहे। वास्तव में डा० लोहिया ने समाज सेवा और समाजवाद की स्थापना को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था, जिसके लिए वे जीवन-पर्यन्त संघर्षरत रहे। चाहे वह अन्तर्राष्ट्रीय अथवा राष्ट्रीय गैर बराबरी हो या ग़रीबी, बेरोजगारी अथवा अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का मामला — वे अदम्य साहस और आत्म विश्वास के साथ जंग करते रहे तथा राष्ट्र को एक नयी दिशा देने तथा देशवासियों में एक नयी स्फूर्ति एवं चेतना जागृत करने के उद्देश्य से सदैव प्रयासरत रहे। उन्होंने पीड़ित मानवता के समग्र कल्याण के लिए कृत संकल्प होकर जब कार्यक्षेत्र में कदम रखा तो कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। किसी से कभी कोई समझौता नहीं किया। पद लोलुपता हो अथवा कैसा ही प्रलोभन, वे कभी अपने "समाजवाद" के एक मात्र लक्ष्य से कदापि विचलित नहीं हुए।

उत्तर प्रदेश में अकबरपुर (फैजाबाद) में 23 मार्च, 1910 को उनका जन्म हुआ। उन्होंने बम्बई तथा कलकत्ता में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद जर्मनी जाकर अर्थशास्त्र में पी०एच०डी० की डिग्री ली और फिर राजनीति के रण क्षेत्र में ही आजीवन समर्पितभाव से निमग्न हो गये। हालांकि इससे पूर्व सोलह वर्ष की आयु में ही वे कांग्रेस अधिवेशन में भाग ले चुके थे। जर्मनी से वापसी पर राजनीति में सक्रिय डा० लोहिया ने विदेश-नीति निर्माण-कार्य में सबसे पहले देश का मार्गदर्शन किया जिससे उनकी विद्वता का सिक्का लोगों के दिलों पर जल्द ही बैठ गया। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में बड़ी निर्भीकता एवं सक्रियता से भाग लिया और 1938 के बाद कई बार बन्दी बनाये गये। केवल इतना ही नहीं, इनको आज़ाद भारत में भी समाजोत्थान के लिए निरन्तर संघर्षरत रहने पर अनेक बार बन्दी बनाया गया। लेकिन वह समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति के

* श्री रेड्डी उत्तर प्रदेश के राज्यपाल हैं।

लिए मैदान में हमेशा डटे रहे।

डा० राम मनोहर लोहिया को आमतौर पर लोग यद्यपि एक राजनीतिज्ञ के रूप में ही याद करते हैं, किन्तु उनकी समस्त गतिविधियों और क्रियाकलापों में समाजवादी चिन्तन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वास्तव में वे एक ऐसे महान सामाजिक चिन्तक थे जिनके हृदय में वर्तमान युग का कल्याण ही नहीं, भावी भारत को एक "आदर्श देश" बनाने की प्रबल इच्छा भी थी। वे गांधी और नेहरू के साथ काफी दिनों देश हित में पूर्ण निष्ठा और लगन के साथ काम करते रहे। हालांकि उन्होंने अपने समाजवादी विचारों के फलस्वरूप समाज में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई थी। यही कारण है कि "समाजवाद" के प्रश्न पर कतिपय राष्ट्रीय नेताओं में जब मतैक्य नहीं रहा तो उन्होंने श्री जय प्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, अशोक मेहता, अरुणा आसिफ अली तथा अच्युत पटवर्धन जैसे प्रयात समाजवादियों के साथ कांग्रेस पार्टी का परित्याग कर सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया। इस पार्टी के उद्देश्य के बारे में डा० लोहिया कहा करते थे कि सोशलिस्ट पार्टी थोड़े बहुत सुधारों से अपने को सन्तुष्ट नहीं कर सकती। उसे तो समाज के पूरे ढांचे में बुनियादी तबदीलियां लानी हैं, और यह तभी सम्भव है जब इच्छा शक्ति के साथ-साथ नियम और मर्यादा से बंधकर काम करने का विवेक भी हो। इसके बगैर सोशलिस्ट पार्टी का विकास असम्भव है।

वास्तव में डा० लोहिया के समक्ष संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का एक मात्र मूल उद्देश्य यही था कि जैसे भी हो हिंसा अथवा रक्तपात के बिना भारत में समाजवाद लाया जाय। इसकी स्थापना जनतांत्रिक ढंग से ही होनी चाहिए। इस प्रकार देखा जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि डा० लोहिया समाजवादी आन्दोलन के एक ऐसे पथ-प्रदर्शक थे, जिन्होंने अपनी अद्वितीय चिन्तन शक्ति से इस आन्दोलन को नये क्रान्तिकारी सामाजिक विचार दिये तथा इसे सशक्त और जन-प्रिय बनाने में कोई कसर उठा न रखी। वे एक सृजनशील एवं दूरदर्शी व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे। उनके समक्ष जब वर्ग-संघर्ष द्वारा वर्ग व्यवस्था को समाप्त करने की बात आयी तो उन्होंने तत्काल स्पष्ट शब्दों में यह उद्घोष किया कि यदि हम वर्ग-संघर्ष करने के साथ-साथ जाति-व्यवस्था का उन्मूलन करने के लिए संघर्ष नहीं करेंगे तो हमारी क्रान्ति अधूरी रह जायगी। डा० लोहिया प्रायः मार्क्स के वर्ग-संघर्ष और वर्ग-विहीन समाज की विचारधारा को इस सीमा तक और विकसित करने पर जोर देते रहते थे जिसमें पिछड़ी जनता को आगे बढ़ने का पूरा अवसर प्राप्त हो।

डा० लोहिया वास्तव में समानता के जबरदस्त समर्थक थे। उनका यह मत था कि जाति-व्यवस्था तथा वर्ग-वाद ही भारत के पतन का प्रमुख कारण रहा है। इसी बात को

ध्यान में रखकर उन्होंने "जाति-उच्मूलन" आन्दोलन प्रारम्भ किया था। इस सम्बन्ध में उनका यह कथन है कि परम्परागत असमानता पर आधारित समाज में सभी लोगों को केवल समान अवसर प्रदान कर समानता नहीं लायी जा सकती। उन्होंने जोर देकर कहा कि पिछड़े वर्ग के लोगों, महिलाओं, हरिजनों, आदिवासियों और अविकसित अल्पसंख्यकों को जब विशेष अवसर प्रदान किये जायेंगे तभी वे तरक्की के स्तर पर पहुंच पायेंगे।

डा० लोहिया यद्यपि आधुनिक सभ्यता के आलोचक थे, किन्तु समानता लाने के अभिप्राय के अत्यधिक प्रशंसक रहे हैं। भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता तथा सामाजिक अन्याय को देखकर उनके मन में अपने समाज के ढांचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की प्रबल इच्छा जागृत हुयी। अतः उन्होंने सात क्रान्तियों को प्रतिपादित किया। उन्हें यह विश्वास था कि यह सातों क्रान्तियां ऐसी हैं जो न केवल भारत को ही बदल देंगी, बरन जब ये सातों क्रान्तियां पूरी हो जायेंगी तो सम्पूर्ण विश्व को ही परिवर्तित कर देंगी। इस सम्बन्ध में उनकी ये निम्नलिखित सात समाजवादी क्रान्तियां विश्व-विख्यात हैं — "(1) नर-नारी समता के लिये (2) चमड़ी के आधार पर राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक विषमता के विरुद्ध (3) पुरानी परम्परा के आधार पर पिछड़े और अगड़े समूहों या जातियों में गैर बराबरी के विरुद्ध और पिछड़ों को विशेष अवसर देने के लिए (4) विदेशी दासता के विरुद्ध और जनतंत्र के आधार पर विश्व सरकार की स्थापना के लिए (5) निजी सम्पत्ति के अस्तित्व तथा उसमें अशक्ति के विरुद्ध और आर्थिक समता एवं नियोजित उत्पादन के लिए (6) निजी जीवन में अन्यायपूर्ण हस्तक्षेप के विरुद्ध और लोकतांत्रिक उपायों के लिये और (7) शस्त्रों के विरुद्ध सत्याग्रह के लिये।" डा० लोहिया ने इन सातों क्रान्तियों को बीसवीं शताब्दी के स्वास्थ्य के लक्ष्य की उपमा दी है। वे क्रूरता, गरीबी तथा बेरोजगारी को इस शताब्दी के लिए अभिशाप समझते थे और इसके निदान के लिए सदैव सामूहिक प्रयास पर बल देते थे।

डा० लोहिया वास्तव में समाजवाद और लोकतंत्र में कोई अन्तर नहीं स्वीकार करते थे। उनकी दृष्टि में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इस सम्बन्ध में उनका यह मत था कि "समाजवाद, समाजवाद ही रहेगा चाहे उसे हम किसी भी नाम से क्यों न पुकारें, लोकतांत्रिक, क्रान्तिकारी, वैज्ञानिक और चाहे किसी अन्य नाम से या सभी नामों से। यूरोप के समाजवाद ने एक दयनीय अवस्था को लाने का प्रयास किया जब उसने सामाजिक प्रजातंत्र को बदल कर लोकतांत्रिक समाजवाद अपना नाम बदला। यह कुछ नहीं बल्कि उसका समाजवाद की तरफ युद्ध ही था। भारतीय समाजवाद ने भी उसका ही अनुकरण किया और विशेषणों का प्रयोग किया। समाजवाद अपने आप को केवल विशेषण खोजकर अन्य प्रथाओं से अलग नहीं कर सकता। यह केवल अपने कार्यक्रमों एवं

व्यवहारों से ही उसे साबित कर सकता है। समाजवाद के लिए अच्छा होगा कि वह केवल स्वयं को समाजवादी ही माने और कहीं और व्याकरण सम्बन्धी विवाद में न पड़ें और मानसिक संतुलन उधार न लगाएं। अपने विचारों की अभिव्यक्ति करना ही इसका ध्येय होना चाहिए।"

डा० लोहिया सामाजिक व्यवस्था में पांच लक्ष्यों यथा समता, प्रजातंत्र, अहिंसा, विकेन्द्रीकरण एवं समाजवाद पर आधारित सिद्धांत को केवल भारत के लिए ही नहीं, पूरे विश्व के लिए महत्वपूर्ण और सर्वोपरि समझते थे। समाजवाद क्या है। इसे डा० लोहिया ने बड़े दिलचस्प ढंग से समझाने की कोशिश की है। समाजवाद को परिभाषित करते हुए उन्होंने लोक सभा में 16 मार्च, 1965 को कहा था कि "समाजवाद से सीढ़ी नीचे उतरो, उस सीढ़ी का नाम है बराबरी। उस बराबरी से एक सीढ़ी और नीचे उतरो, आर्थिक बराबरी, सामाजिक बराबरी, राजकीय बराबरी, धार्मिक बराबरी। उससे एक सीढ़ी और नीचे उतरो क्या है आर्थिक बराबरी। तब उसके बाद आयेगी समता, सम्पूर्ण समता, सम्भव समता"।

डा० लोहिया एक बड़े देशभक्त थे। लेकिन वे संकुचित एवं संकीर्ण धारणा के राष्ट्रवादी नेता कदापि नहीं थे। उनका दृष्टिकोण तथा विवेक विश्वव्यापी था। उनका यह विश्वास था कि मानव स्वतंत्रता तथा विश्व एकता का लक्ष्य पूंजीवाद अथवा कम्युनिस्ट-व्यवस्था की सहायता से प्राप्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये यह दोनों ही उपयुक्त नहीं हैं।

डा० लोहिया निर्देशन तथा प्रशासन में सामन्तशाही भाषा के इस्तेमाल के कट्टर विरोधी थे। वे सामन्तशाही वेशभूषा तथा महल जैसे भवनों के भी बड़े विरोधी थे। उनका इस सिलसिले में यह मत था कि इन सब चीजों की मौजूदगी वास्तव में जन-साधारण की दुर्दशा और दरिद्रता के बिल्कुल विपरीत है। डा० लोहिया यह भी कहा करते थे कि इस देश की जनता में नये जीवन का सूत्रपात उस समय तक नहीं हो सकता जब तक विदेशी भाषा का इस्तेमाल जारी रहेगा। ये डा० लोहिया ही हैं जिनसे प्रेरणा प्राप्तकर हमने लोक सभा में तमिल, और तेलगू जैसी दक्षिण भारत की भाषाओं का इस्तेमाल शुरू किया। इसके अलावा डा० लोहिया के ही नेतृत्व में मुझ जैसे गैर-हिन्दी भाषाई लोगों ने लोक सभा और इसके बाहर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के इस्तेमाल पर जोर दिया।

डा० लोहिया समाज में समानता और समता के लिए बराबर संघर्षरत रहे इस विश्वास के साथ ही मैं भले मर जाऊँ पर "इंसान जिन्दा रहेगा और आखिरकार जीत समाजवाद की ही होगी।"

अन्ततः इसे देश, समाज और राजनैतिक जगत की अपूर्णीय क्षति ही कहा जायेगा कि यह महान विचारक तथा दार्शनिक समाजवाद की स्थापना के लिए संघर्ष करते ही करते हम सबके बीच से उठ गये और भारतवासियों के सामने सामाजिक चिन्तन एवं संगठन का एक ऐसा प्रश्न चिन्ह छोड़ गये जिसके लिए देश एवं भावी भारत के कर्णधार सदैव आदर के साथ उन्हें याद करते रहेंगे तथा समाजवादी इतिहास में उनका नाम हमेशा सुनहरे शब्दों में चमकता रहेगा।

सरकार द्वारा डा० लोहिया के स्वास्थ्य एवं इलाज पर समुचित ध्यान न देने के कारण ही उनकी मृत्यु १२ अक्तूबर, १९६७ को हो गयी। वे सम्पत्ति विहीन जन्मे थे और जब उनका देहावसान हुआ तो वे अपने पीछे कोई सम्पत्ति छोड़ कर नहीं गये। वे धन तथा परिवार के बन्धनों से बिल्कुल मुक्त थे। वस्तुतः पूरी मानव जाति ही उनका परिवार था। इस संबंध में उनका बस यही नारा था — "वसुधैव कुटुम्बकम्"।

डा० लोहिया के बारे में एक यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि उनका दाह संस्कार भारत की राजधानी दिल्ली के उस विद्युत शवदाह गृह में हुआ था जिसमें प्रतिदिन लावारिस गरीबों की लाशों का शव-दाह होता था। इससे गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति एवं स्नेह का स्वतः अनुमान लगाया जा सकता है।

3

# डा० राम मनोहर लोहिया—एक महान समाजवादी

सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी*

डा० राम मनोहर लोहिया एक कामरेड और नेता थे। हमने तीन दशकों से अधिक समय तक समाजवादी आन्दोलन में एक साथ काम किया था। समाजवादी आन्दोलन के एक बहुत ही नाजुक दौर में उनका असामयिक निधन सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए एक अपूरणीय क्षति थी।

हमारी पीढ़ी में से वे ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो महानता के उच्च शिखर तक पहुंचे। इस देश के बहादुर स्वतंत्रता सेनानियों और राष्ट्रीय नेताओं में उनका नाम सदा याद किया जायेगा। ब्रिटिश राज की तुलना में कांग्रेस शासन के दौरान वे कहीं अधिक बार कारावास गये। वे एक महान योद्धा थे जो कहीं भी हो रहे अन्याय को सहन नहीं कर सकते थे और उसका पूरी ताकत के साथ विरोध करते थे चाहे इसके लिए अकेला ही क्यों न आगे आना पड़े। वे तब तक आराम करने को तैयार न थे जब तक कि भारत की भूमि से ब्रिटिश साम्राज्यवाद और सामन्तवादी व्यवस्था के आखिरी अवशेष नहीं मिट जाते। उन्होंने कैलाश मानसरोवर से लेकर कन्याकुमारी तक एक स्वतंत्र भारत की संकल्पना की थी और इसीलिये उन्होंने पुर्तगाली साम्राज्यवाद का सशक्त विरोध किया। वे पहले भारतीय थे जिन्हें गोवा में कैद किया गया। उन्होंने पूर्वोत्तर क्षेत्र में तथाकथित 'इनर लाइन' प्रतिबंध का विरोध किया था और उन्हें मणिपुर में कारावास हुआ। उनके विचार क्रांतिकारी थे और महात्मा गांधी के बाद, स्वतंत्र भारत में वे अहिंसात्मक आन्दोलन के प्रतीक बन गये थे।

बर्लिन विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के बाद भारत लौटने पर वे समाजवादी आन्दोलन में शामिल हो गये। उन्होंने जर्मनी में स्वयं अपनी आंखों से नाजी आन्दोलन के अत्याचार देखे जिसके कारण उनके मन में हिंसा तथा नाजीवाद के प्रति बहुत घृणा पैदा हो गई।

उन्होंने भारतीय समाजवाद को एक नई अवधारणा और दर्शन देने के लिए कार्ब

* श्री द्विवेदी भूतपूर्व संसद सदस्य हैं।

और कड़ा संघर्ष किया। कम्युनिस्टों के साथ संयुक्त मोर्चे की नीति के विरुद्ध विद्रोह की आवाज उठाने वाले समाजवादी नेताओं में वह पहले नेता थे तत्पश्चात् कांग्रेस समाजवादी पार्टी द्वारा इसका अनुसरण किया गया। उस दृष्टि से वे एक परम्परावादी समाजवादी नहीं थे और वे मार्क्सवाद तथा साम्यवादी एकतंत्रवाद के विरोधी थे। वे चाहते थे कि भारतीय समाजवादी आन्दोलन मार्क्स की विचारधारा और कार्यप्रणाली से मुक्त रहे। अहिंसा के गांधीवाद सिद्धान्त पर उनका बहुत अधिक विश्वास था और उन्होंने गांधीवादी और मार्क्स की विचारधाराओं के बीच संतुलन बिठाने में अहम भूमिका अदा की। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान पूंजीवाद प्रणाली के विरुद्ध समाजवादी पार्टी को सर्वाधिक प्रभावशाली हथियार बनाने के लिए कार्यप्रणाली को नया अर्थ और प्रक्रिया प्रदान करना था। वे कहा करते थे कि साम्यवाद और पूंजीवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जो मानव स्वतंत्रता और अधिकारों के केन्द्रीयकरण और दबाने में विश्वास रखते हैं। आचार्य नरेन्द्र देव और जयप्रकाश नारायण जैसे मार्क्सवादियों को भी अन्ततः कम्युनिस्टों से अलग होना पड़ा था।

इस प्रकार समूचा समाजवादी आन्दोलन इन तीन नेताओं के विचारों और कार्यप्रणाली से प्रभावित हुआ था। समाजवादियों ने एक सकारात्मक वस्तुपरक दृष्टिकोण का विकास किया, स्वयं को पूरी तरह से साम्यवादी एकतंत्रवाद से अलग कर लिया और लोकतांत्रिक समाजवाद इसकी विचारधारा, लक्ष्य तथा उद्देश्य बन गया। भारतीय समाजवादियों के लिए यह महान गौरव की बात है कि न केवल सोवियत रूस तथा पूर्वी यूरोप के देशों में साम्यवादी साम्राज्य ढह रहा है अपितु धीरे धीरे इसका स्थान लोकतांत्रिक समाजवाद ले रहा है। इस प्रकार हमारे कथन की पुष्टि हुई है। इस समय यदि जे० पी०, लोहिया और आचार्य जी जीवित होते, तो पूरा देश उनका सम्मान करता और मुझे विश्वास है कि यदि उनमें सबसे छोटे लोहिया जी जीवित होते तो पूरी भारतीय राजनीति ने एक नया क्रांतिकारी मोड़ ले लिया होता।

लोहिया जी के दृढ़ रवैये और अग्रणी भूमिका का ही परिणाम था कि भारतीय समाजवादियों ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीति का विकास किया। वे विदेशी मामलों में तीसरे विश्व के देशों के पक्ष में बोलते थे और उस नीति के अनुरूप अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी नीति का निर्धारण हुआ। न तो हम समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय देशों के साथ थे और न ही साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय देशों के साथ। किन्तु इन दो संगठनों से स्वतंत्र एक स्वतंत्र एशियायी समाजवादी मंच बनाया जाना था। लोहिया जी लगभग सभी दक्षिण एशियाई देशों में गए, उन्होंने समाजवादी दलों के साथ सम्पर्क स्थापित किया और इसके परिणामस्वरूप 1953 में रंगून में एशियाई समाजवादी सम्मेलन हुआ था। जयप्रकाश नारायण ने इस सम्मेलन का उद्घाटन किया था। यह कोई साम्यवाद विरोधी आन्दोलन नहीं था, अपितु एशियाई

देशों के उन समाजवादियों का सम्मेलन था जो लोकतांत्रिक समाजवादी विचारधारा में विश्वास रखते थे। एशियन सोशिलिस्ट ब्यूरो ने कुछ वर्षों तक कार्य किया किन्तु एशियाई देशों और भारत में समाजवादी दलों के कमजोर पड़ने पर इसकी भी स्वाभाविक मृत्यु हो गयी। मैं यहां यह कहना चाहूंगा कि लोहिया जी में समाजवादी आन्दोलन को सकारात्मक अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय छवि प्रदान करने की दूरदर्शिता थी। मुझे विश्वास है कि लोकतांत्रिक समाजवादी आदर्श के विकास में रुचि रखने वाले लोगों को समाजवादी आन्दोलन द्वारा सृजित साहित्य से बहुत लाभ पहुंचेगा।

निस्संदेह, लोहिया जी एक प्रतिभावान, मौलिक चिन्तक और एक महान समाजवादी सेनानी थे, परन्तु वे समाजवादी आन्दोलन में एकता बनाये रखने में बुरी तरह असफल रहे। मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि समाजवादी बन्धुओं में कोई आधारभूत और मूल मतभेद थे। परन्तु व्यक्तिगत कलह, असहिष्णुता और अधैर्य जैसे कारणों से समाजवादी बंट गये। यह एक बहुत बड़ी त्रासदी है कि आज समाजवादी संगठन का एक स्मृति चिन्ह भी शेष नहीं है। आज समाजवाद का सम्पूर्ण ढांचा बिखर गया है और अब ऐतिहासिक दस्तावेज का एक हिस्सा बन कर रह गया है।

4

# डा० राममनोहर लोहिया—एक क्रांतिकारी

—जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी*

डा० राममनोहर लोहिया भारत के युगांतरकारी राजनीतिज्ञ थे। यह सही है कि वे जितने बड़े राजनीतिज्ञ थे, उसकी न इस देश में और न बाहर स्वीकृति सहजता से प्राप्त हो सकी। परन्तु यह भी सही है कि स्वाधीन भारत की राजनीति निर्माण में डा० राममनोहर लोहिया ने जो दूरगामी प्रभाव डाले, उसका परिणाम हम आज समझ रहे हैं। इस बात को भी प्रायः भुला दिया जाता है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम में डा० राममनोहर लोहिया की क्या निर्णायक भूमिका थी। उसका कारण यह था कि उस समय देश में महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्र देव, डा० राजेन्द्र प्रसाद जैसे वरिष्ठ नेता थे, जिनके समक्ष डा० लोहिया कनिष्ठ ही माने गये। अपने सिद्धांतों की खातिर और दूसरे लोगों को सम्मान देने के लिए डा० लोहिया बड़े पदों से बचते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके बैठाये हुए लोग उनसे अधिक ख्याति प्राप्त कर गये। मैं यह नहीं कहता कि डा० लोहिया का योगदान उन नेताओं से अधिक है, जिनका मैंने उल्लेख किया है परन्तु यह सच है कि जब वे नेता भूतकाल के नेता थे, डा० लोहिया आने वाले भारत के नेता थे। आज यदि वे जीवित होते तो निश्चित ही देश में सबसे अधिक प्रतिष्ठित और शक्ति सम्पन्न व्यक्ति होते। क्योंकि आज जो ढांचा हमें दिखायी देता है, उसकी कल्पना डा० राममनोहर लोहिया की ही थी।

डा० लोहिया का यह दुर्भाग्य रहा कि वे समय से आगे की सोचते थे। साथ ही उनके बहुत से साथी, जिन पर उन्होंने भरोसा किया था, उनको छोड़कर उधर चले गये, जिधर सत्ता और शासन था जबकि लोहिया अपने सिद्धांतों पर अडिग रहे। मुझे डा० लोहिया से उस दिन बड़ी अंतरंग बात करने का अवसर मिला जिस दिन या जिसके दूसरे दिन ही वे विलिंगडन अस्पताल में अपनी पौरुष ग्रंथी का आपरेशन कराने गये थे। सायंकाल का समय था, संसद के सेंट्रल हाल में बहुत थोड़े लोग थे और हम दोनों काफी देर तक

* श्री चतुर्वेदी एक प्रतिष्ठित पत्रकार हैं।

पास-पास बैठे बात करते रहे। अब उस बातचीत को याद करता हूं तो ऐसा लगता है कि जैसे वे अपने हृदय की बात अंतिम समय में किसी से कह रहे थे और उसे सुनने वाला उस समय मैं ही था। बातों-बातों में उन्होंने कहा-चतुर्वेदी, जिन्दगी में कोई मजा नहीं आया। मैंने कहा-ऐसी बात तो नहीं है। आप लाखों के नेता हैं। आपके कहने पर लोग सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। इस पर उन्होंने कहा कि कोई सुनता नहीं है। तब मैंने कहा कि आप जब बोलते हैं, लोग मंत्रमुग्ध होकर सुनते हैं। सभा में पत्ता भी नहीं खड़क सकता, आप जो लिखते हैं, उसे लाखों लोग पढ़ते हैं और उनमें बहुतेरे उसे वेद-वाक्य मानते हैं। फिर भी उन्होंने कहा कि नहीं, कोई छवि बनी नहीं। उस समय मैंने कुछ हल्के ढंग से कह दिया कि डाक्टर साहब आपको अपनी छवि बनाने की फुरसत ही कहां थी। आप तो दूसरों की मूर्ति तोड़ने में ही अपना समय लगाते रहे। परन्तु अब मैं सोचता हूं कि डा० लोहिया की शिकायत सही थी और वह शिकायत समस्त भारतीय समाज से थी। उनके जीवनकाल में उनके देशवासियों ने उनके महत्व को स्वीकार नहीं किया। उसके दो कारण थे, एक तो वे इतने स्पष्टवादी थे कि बड़े से बड़े व्यक्ति की चूक को बड़े ज़ोरदार ढंग से प्रकट करते थे। दूसरी बात यह थी कि उन्होंने अपने कामों का न तो कभी स्वयं डंका बजाया और न किसी से बजवाने दिया।

डा० राममनोहर लोहिया का नाम मैंने सबसे पहले उस समय सुना जब पंडित जवाहरलाल नेहरू 1936 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। महामंत्री तो उन्होंने आचार्य कृपलानी को ही रखा था, लेकिन उन्होंने महासमिति कार्यालय में चार पढ़े-लिखे नवयुवकों को विभागीय मंत्री बनाया था। ये थे - डा० राममनोहर लोहिया, डाक्टर के०एम० अशरफ़, डा० ज़ैनुल आबदीन अहमद (ज़ेड०ए०अहमद) और चौथे संभवतः एक यूरोपियन थे-ल्योनार्ड शिफ। डा० लोहिया जर्मनी से पी०एच०डी० की उपाधि लेकर आये थे और आर्थिक मामलों में विशेषज्ञ थे। उन दिनों कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बन चुकी थी। डा० लोहिया की सहानुभूति उसके साथ थी जबकि अन्य तीन साम्यवादी विचारों के समझे जाते थे। कांग्रेस कार्य-समिति में आचार्य नरेन्द्र देव, श्री जयप्रकाश नारायण और श्री अच्युत पटवर्धन जैसे समाजवादी आ चुके थे। महात्मा गांधी कांग्रेस समाजवादियों के दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे यद्यपि उनके गुणों की वे प्रशंसा करते थे विशेषतया आचार्य नरेन्द्र देव और श्री जयप्रकाश नारायण की। जब सन् 1942 का 'करो या मरो आन्दोलन' शुरू हुआ और महात्मा गांधी सहित देश के बड़े-बड़े नेता गिरफ्तार हो गये, उस समय डा० राममनोहर लोहिया और उनके साथी ही थे, जिन्होंने पुलिस की निगाहों से बचकर 'अगस्त क्रांति' को, जो उस आन्दोलन का सही नाम होना चाहिए, संचालित किया। वे उन नेताओं में से थे जो गिरफ्तार नहीं हो सके थे। उसके बाद कभी महाराष्ट्र और कभी कलकत्ता और कभी कहीं, बैठकर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध बम्बई

में, कलकत्ता में, बिहार में, बंगाल और उत्तर प्रदेश में एक हिंसक क्रांति का संचालन कर रहे थे। श्री जयप्रकाश नारायण उस समय हज़ारीबाग जेल में पहले ही नज़रबंद थे, तभी उन्हें उनके कुछ साथियों के सहित हज़ारीबाग जेल से निकलवाया गया। सरकार जानती थी कि यह समाचार देश में बिजली की तरह कौंध जायेगा और इसलिए ऐसोसिएटिड प्रेस ने उस दिन एक छोटे से समाचार में उन व्यक्तियों की सूची प्रसारित की, जो हज़ारीबाग जेल से भाग निकले थे। उसी में श्री जयप्रकाश नारायण तथा पांच अन्य साथी थे। समाचारपत्र इस समाचार की अहमियत को भांप भी नहीं पाये। दिल्ली के स्टेट्समैन और 'नेशनल कॉल' में छोटे छोटे समाचार छपे। लेकिन दिल्ली के दैनिक 'विश्वमित्र' के पारखी सम्पादक श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने इस समाचार की गरिमा को पहचान लिया और प्रमुख समाचार का शीर्षक दिया - 'जयप्रकाश जेल से भाग निकले'। जयप्रकाश नारायण हज़ारीबाग से बनारस पहुंचे और फिर उनको लेकर नेपाल में आज़ाद दस्ता बनाने का निर्णय किया गया। उस आज़ाद दस्ते के दो संचालक थे—श्री जयप्रकाश नारायण और डा० राममनोहर लोहिया। बिहार से सटी नेपाल की भूमि पर रेडियो स्टेशन बनाया गया। डा० लोहिया अपना ट्रांसमीटर लेकर आये और रेडियो प्रचार विभाग के संचालक बने। उनके बयानों ने हिन्दी क्षेत्रों में आग फूंक दी। अंग्रेज़ शासन विचलित हो गया। डा० लोहिया के मन में इस आन्दोलन का, भावी क्रांति का जो नक्शा था, वह उनके लेख 'क्रांति की तैयारी करो' में इस प्रकार कहा गया था - धुन के पक्के और शिक्षा पाए हुए पांच-पांच आदमियों के दस्ते ऐसे तैयार किये जाएं, जो ज्यों ही क्रांति शुरू हो, आगे बढ़कर जनता का नेतृत्व करें और कामयाबी तक पहुंचाएं। बड़े से बड़ा बलिदान करके भी आप से आप विद्रोह के लिए खड़ी हुई जनता जो काम पूरे तौर से नहीं कर सकती, वे ही काम इन दस्तों के चलते आसानी से सम्पन्न हो सकेंगे। जुलूस पर गोली चलाने के लिए भेजे गए या अंग्रेज़ी सरकार के केन्द्रों की रक्षा पर तैनात किए गए सैनिकों के हथियार छीनने की बात हो, या सड़क काटने, रेल की पटरियां उखाड़ने और रेलगाड़ियों का चलना बंद करने की बात हो, या थानों पर, जेलों पर, कचहरियों पर, और सेक्रेटेरियट पर, जनसमूह को लेकर धावा करने की बात हो—इन कामों के लिए पहले से ही विशेष शिक्षा प्राप्त किए हुए नौजवानों से बने ये दस्ते कमाल कर दिखाएंगे। जिन-जिन क्षेत्रों में ऐसे दस्ते होंगे, वहां क्रांति शुरू होते ही अंग्रेज़ी राज का खात्मा चुटकी बजाकर कर दिया जा सकता है और इनसे प्रोत्साहन पाकर दूसरे क्षेत्रों में भी क्रांति की ज्वाला धधक उठेगी और अंग्रेजी राज को स्वाहा कर देगी।"

कोसी नदी के कछार में 'बकरो का टापू' नामक स्थल में श्री जयप्रकाश नारायण और डा० लोहिया के कार्यालय थे। लेकिन वे लोग वहां पर दो महीने ही रह पाये थे कि ब्रिटिश शासन को पता चल गया कि नेपाल क्षेत्र में क्रांतिकारी भर्ती किये जा रहे हैं और

रेडियो प्रसारण होता है। डा० लोहिया को इस बात का विश्वास था कि यदि हर ज़िले में सौ मज़बूत आदमी भी उन्हें मिल जायें तो क्रांति सफल हो सकती है। भर्तियां जारी थीं, प्रचार चल रहा था कि नेपाली पुलिस ने उन्हें घेर लिया। फिर भी रात को पुलिस की नाकेबंदी से बचकर जयप्रकाश नारायण और डा० लोहिया वहां से निकल गये और कलकत्ता पहुंचे। जहां से श्री सुभाषचन्द्र बोस को पत्र भेजा गया, परन्तु बाद में वे दोनों पकड़े गये और लाहौर के किले में अलग-अलग रखे गये, अमानुषिक अत्याचार हुए और फिर उन्हें आगरा की जेल में भेजा गया। उस समय डा० लोहिया ने ब्रिटिश अर्थशास्त्री और लेबर पार्टी के तत्कालीन अध्यक्ष हेरल्ड लास्की को एक पत्र भेजा, जिसमें देश में किये जा रहे अत्याचारों का विवरण दिया गया था। उस समय वर्ष 1945 में 16 महीने की नज़रबंदी के बाद श्री जयप्रकाश नारायण और डा० लोहिया को आगरा जेल भेज दिया गया और जब संसद सदस्यों का एक शिष्टमंडल भारत आया तो वह आगरा जेल में इन दोनों समाजवादी नेताओं से मिलने भी गया। बाद में जब मंत्रिमंडल मिशन भारत में स्वतंत्रता की बातचीत करने आया, तभी 11 अप्रैल, 1946 को ये दोनों आगरा जेल से छोड़े गये।

महात्मा गांधी ने तो जेल से छूटने के बाद 'अगस्त क्रांति' के सिलसिले में हुई सारी हिंसात्मक गतिविधियों से अपने को और कांग्रेस को अलग कर दिया था। उस समय सारा आन्दोलन डा० लोहिया और उनके साथियों के जिम्मे ही था और यह बात सब जानते हैं कि उस आंदोलन के फलस्वरूप ब्रिटिश शासन को जो चोट पहुंची, उसी के बाद अंग्रेजी सरकार ने भारत छोड़ने का निर्णय किया। पर कितने लोग हैं जो इस सफलता का श्रेय डा० राममनोहर लोहिया को देते हैं।

डा० लोहिया की यह पहली स्वाधीनता की लड़ाई नहीं थी। उन्होंने ही गोआ को स्वाधीन कराने का आंदोलन प्रारंभ किया, जिसे तत्कालीन बम्बई राज्य के मुख्यमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने गैर-कानूनी घोषित कर दिया, फिर भी भारत सरकार को गोआ को मुक्त कराने के लिए पुलिस कार्रवाई के लिए बाध्य होना पड़ा था। कितने लोग यह जानते हैं कि जब 1967 में विभिन्न राज्यों में कांग्रेस विरोधी संविद सरकारें बनीं तो उनके निर्माण में डा० राममनोहर लोहिया की रणनीति की क्या भूमिका थी, क्यों उन्होंने चौधरी चरण सिंह को उत्तर प्रदेश का मुख्य मंत्री स्वीकार किया।

डा० लोहिया का यह मत था, जिससे हम असहमत हो सकते हैं, कि देश में जनता का शासन तभी आयेगा, जब वे लोग जो अभी तक सत्ता और समृद्धि से दूर रहे हैं, वास्तव में सत्ताधारी बनें। वैसे यह समाजवाद का आधारभूत सिद्धांत है परन्तु डा० लोहिया का ऐसा ख्याल था कि जो हिन्दू उच्च वर्ण के लोग अभी तक सामाजिक, आर्थिक और

राजनीतिक प्रभुत्व को भोगते रहे हैं, वे यदि अपने को समाजवादी या साम्यवादी कहें तो भी देश में उन लोगों का राज्य नहीं बन पायेगा, जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हैं। उनका ऐसा भी ख्याल था कि भारत में जाति-प्रथा इतनी जमी हुई है कि समाजवादी व्यवस्था में भी उससे हटना मुश्किल होगा। इसलिए उन्होंने सोचा कि पिछड़ी जातियों को सामूहिक रूप से समाजवाद के मार्ग में प्रशिक्षित किया जाये। उसी का परिणाम था कि बिहार में कर्पूरी ठाकुर जैसे नेता पैदा हुए और उन्होंने चौधरी चरण सिंह, राव बीरेन्द्र सिंह या इसी प्रकार के जाट, यादव, केवट, माली आदि जातियों के प्रतिनिधियों को प्रोत्साहन दिया जिसका परिणाम हम आज देख रहे हैं।

डा० लोहिया समाजवादी तो थे, पर अपने को मार्क्सवादी नहीं मानते थे। इसलिए वर्ग संघर्ष की उनकी अपनी अलग धारणा थी, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि डा० लोहिया को अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा का पता न था। भारत आने से पहले डा० लोहिया जर्मनी में चार वर्ष रहकर आये थे और वहां पर बर्लिन विश्वविद्यालय में उन्होंने अर्थ-शास्त्र, इतिहास और दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया था उन्होंने पी० एच० डी० के लिए अपना विषय चुना था-"नमक और सत्याग्रह"। अपने इस शोध प्रबन्ध में उन्होंने भारत में नमक पर कर लगाने के आर्थिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक प्रभाव की चर्चा की थी। जब वे बर्लिन में थे तो केन्द्रीय यूरोप की जो 'हिन्दुस्तान ऐसोसिएशन' थी, उसके भी वे काफी समय तक सक्रिय रहे थे। उन्होंने मद्रास के दैनिक हिन्दू में 'जर्मनी में हिटलरवाद' के उदय पर लेख भी भेजा था। जब वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कार्यालय में आये तो उन्हें अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में आर्थिक सिद्धांतों को अध्ययन करने का अधिक अवसर मिला। डा० लोहिया स्वयं फैजाबाद के एक वैश्य परिवार से आये थे और उन्हें देशी और विदेशी अर्थ-समाज के बारे में गहरा ज्ञान था। वे अविवाहित थे, इसलिए इलाहाबाद के 'स्वराज भवन' में ही उनकी सारी दुनिया बसती थी। जिस कमरे में डा० लोहिया बहुत दिन रहे, वह कमरा 'स्वराज भवन' के पुराने गाइडों की ज़बान पर आज भी डा० लोहिया के कमरे के नाम से चढ़ा हुआ है।

जिस समय डा० लोहिया कांग्रेस समाजवादी दल के सदस्य हुए, उस समय श्री जयप्रकाश नारायण उसके महामंत्री नियुक्त हुए थे। आचार्य नरेन्द्र देव सबसे बुजुर्ग नेता थे और समाजवाद तथा बौद्ध-दर्शन, दोनों में ही उनकी समान गति थी। इन दोनों नेताओं का श्री जवाहरलाल नेहरू के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध भी बहुत अच्छा था। श्री जयप्रकाश नारायण को तो महात्मा गांधी भी अपना दामाद कहकर पुकारते थे क्योंकि उनकी पत्नी प्रभावती महात्मा गांधी की शिष्या थी। यद्यपि उन दिनों श्री जयप्रकाश नारायण ने महात्मा गांधी के सिद्धांतों की खासतौर पर खादी और चर्खे के कार्यक्रमों की

बड़ी आलोचना की थी। 1936 में श्री जयप्रकाश नारायण ने कांग्रेस समाजवाद का जो लक्ष्य रखा था, उसमें मार्क्सवादी का उल्लेख किया था। वे आजादी के बाद भी यह समझते थे कि नेहरू के रूप में समाजवादियों ने एक समाजवादी कांग्रेस में जोड़ दिया है और कांग्रेस के विरोध में सरकार बनाने की दृष्टि से कोई पार्टी चलाना उनकी रुचि की बात नहीं थी। लेकिन 1952 में समाजवादी दल ने चुनाव लड़ा और इस उद्देश्य से किसान मज़दूर प्रजा पार्टी के साथ सहयोग कर सितम्बर, 1952 में प्रजा समाजवादी पार्टी की स्थापना की। डा० लोहिया इससे इसलिए सहमत थे कि उनका खयाल था कि कांग्रेस के विरुद्ध मत बटेंगे नहीं और फिर कांग्रेस का विकल्प निकलेगा। लेकिन चुनाव में प्रजा समाजवादी दल उतना भी सफल नहीं हुआ जितना साम्यवादी हो गये थे, यद्यपि उन्हें काफी मत मिले थे। अंदाज लगाया गया कि अगर प्रजा समाजवादी दल ने कम स्थानों पर चुनाव लड़ा होता तो परिणाम बेहतर होता । फिर भी 1953 में पं० जवाहरलाल नेहरू ने श्री जयप्रकाश नारायण को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया । लेकिन श्री जयप्रकाश नारायण ने इसे अस्वीकार किया और एक पत्र लिखा जिसमें साफ़ कहा कि यदि समाजवाद की दिशा में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए कोई प्रयास हो, तभी आपके इस निमंत्रण का कोई मूल्य है, केवल कुछ स्थानों की प्राप्ति के लिए, चाहे वे केन्द्र में हों या राज्यों में हों, मैं मंत्रिमण्डल प्रवेश को महत्व नहीं देता । मार्च, 1953 में जब श्री जयप्रकाश नारायण और श्री जवाहरलाल नेहरू को अपना जवाब देकर लौटे थे और श्री ब्रजकृष्ण चांदीवाला के यहां ठहरे हुए थे तो मैं उनसे मिला था । मैंने जयप्रकाश बाबू से पूछा कि आपने मंत्रिमंडल में स्थान क्यों नहीं स्वीकार किया । श्री नेहरू के बाद आप ही सबसे प्रभावशाली व्यक्ति होते, तो उन्होंने कहा कि मैं अकेला क्या कर लेता । जब तक श्री नेहरू मेरे अन्य साथियों को लेने के लिए तैयार न हों, तब तक मैं क्या करूंगा । उनकी बातचीत से स्पष्ट था कि श्री जवाहरलाल नेहरू, डा० राममनोहर लोहिया को अपने मंत्रिमंडल में लेने के लिए तैयार नहीं थे और श्री जयप्रकाश नारायण बिना डा० लोहिया के मंत्रिमण्डल में जाने के लिए तैयार नहीं थे । उनका यह निर्णय ठीक ही था क्योंकि तब तक प्रजा समाजवादी दल या उसका समाजवादी तत्व अगर किसी को अपना वास्तविक नेता मानता था तो वह डा० राममनोहर लोहिया थे । वे अच्छे संगठनकर्ता थे, अपने कार्यकर्ताओं का आदर करते थे और उनके सुख-दुख में भागी रहते थे । यह तो था ही, लेकिन जहां तक राजनीतिक प्रश्नों के दूर-दृष्टि से देखने का सवाल था, उनकी आंख बड़ी चौकन्नी थी और अपने विचारों को प्रकट करने में उन्हें अपूर्व कौशल प्राप्त था । डा० लोहिया को पंडित जवाहरलाल नेहरू में उतना विश्वास नहीं था, जितना जयप्रकाश जी को था और जैसा डा० लोहिया ने भय प्रकट किया था, पंडित नेहरू ने श्री जयप्रकाश नारायण के प्रस्ताव के उन चौदह-सूत्री कार्यक्रम को स्वीकार

नहीं किया, जिसमें समाजवाद की दिशा में आर्थिक सुधार होने थे जैसे भूमि का वितरण बैंकों, बीमा कम्पनियों, कोयला तथा अन्य खनिज उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, राज्य व्यापार का विकास और सरकारी नौकरों के बड़े वेतनों में कमी । श्री नेहरू ने सिद्धांततः इनमें से किसी का विरोध नहीं किया, लेकिन उन्होंने आगामी चार वर्षों में यह प्रस्ताव लाने का वायदा करना भी उचित नहीं समझा । डा० लोहिया पहले ही इसके विरोधी थे कि बातचीत की जाये क्योंकि वे समझते थे कि सरकार से बातचीत करने का अर्थ यही होगा कि लोग प्रजा समाजवादी दल को सरकार से भिन्न विशेष विचारधारा वाली पार्टी नहीं मानेंगे ।

श्री लोहिया कितनी स्पष्टता से अपने विचार प्रकट कर सकते थे, इसका उदाहरण उनका वह लेख है जो उन्होंने मई 1953 में 'जनता पत्र' में लिखा था। उन्होंने लिखा था—'दो रास्ते हैं जिनके द्वारा श्री जयप्रकाश नारायण श्री नेहरू के उत्तराधिकारी हो सकते हैं। इनमें से एक रास्ता है कि श्री नेहरू की दयावंत सद्भावना और समझौते के द्वारा, जिस रास्ते का मेरे जैसे लोग अपनी पूरी शक्ति भर विरोध करेंगे। क्योंकि ऐसी स्थिति में श्री जयप्रकाश नारायण श्री नेहरू से भी बुरे प्रधानमंत्री साबित होंगे। दूसरा रास्ता है कि उन्हें हमारे देश के उन करोड़ों लोगों के नेता के रूप में खड़े होने का अवसर दिया जाये जो या तो समाजवाद के लिए वोट डाल रहे होंगे या महान सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग ले रहे होंगे। मैं समझता हूं कि इस प्रकार लोग अपनी पूरी शक्ति के साथ श्री जयप्रकाश नारायण को प्रधानमंत्री बनाने में मदद करेंगे और इस प्रकार श्री जयप्रकाश नारायण एक बढ़िया प्रधानमंत्री सिद्ध होंगे।

श्री जयप्रकाश नारायण से डा० लोहिया का मतभेद होने पर जब श्री जयप्रकाश नारायण व कुछ साथियों ने पार्टी से त्यागपत्र दे दिया तो डा० लोहिया ने सभी को इस्तीफा वापस लेने के लिए कहा और यह कहा—जयप्रकाश और अपने सम्बन्धों के बारे में मैं इससे ज्यादा और क्या कह सकता हूं कि हम दोनों ने जब 1944 में नेपाली जेल से आज़ाद दस्ते द्वारा आज़ाद किये गये तो साथ साथ गोलियों का सामना किया था। यह दूसरी बात है कि वे गोलियां हमें नहीं लगीं लेकिन इससे कहने के अलावा कि मेरा अपना कोई भाई नहीं है, मैं अपने और जयप्रकाश के सम्बन्धों के बारे में और ज्यादा कहना आवश्यक नहीं समझता। इससे क्या फ़र्क पड़ता है कि भूतकाल में हम लड़ते रहे हैं और शायद भविष्य में भी लड़ेंगे।

डा० लोहिया के विचारों का श्री जयप्रकाश नारायण आदर किया करते थे। अन्ततोगत्वा समाजवाद के जिन सिद्धांतों को लोहिया ने प्रतिपादित किया था, वही समाजवादियों के आधार को देर-सबेर उन सारे प्रस्तावों को कांग्रेस सरकार ने स्वीकार किया, हालांकि

भूमि-सुधार अधूरा रहा और सरकारी अधिकारियों के वेतन और फायदे घटने के बजाय बढ़ते गये। ये वे कारण थे जिन्होंने समाजवाद की प्राप्ति को कठिन बना दिया और समाजवाद को संविधान में शामिल करने के बाद भारत पूंजीवाद की ओर और अधिक बढ़ गया।

डा० राममनोहर लोहिया से सम्पर्क तो मेरा तभी हुआ जब वे लोकसभा के सदस्य होकर आये। परन्तु उन्होंने आते ही बड़ी आत्मीयता प्रकट की, जिससे मुझे आश्चर्य हुआ। एक अज्ञात व्यक्ति से इतना सम्मान पाने का कोई कारण समझ में नहीं आता था। बाद में पता लगा कि मैंने 1950 से पूर्व रीवा में समाजवादियों की सभा पर पुलिस की गोली-काण्ड की जो खोज-परक रिपोर्ट समाचारपत्रों में प्रकाशित कराई थी, उससे डा० लोहिया प्रभावित हुए थे। मैंने आर्थिक शोध संस्थान के एक छोटे से प्रकाशन से लेकर यह सूचना 'आज' में प्रकाशित करायी थी कि टेहड़ी गढ़वाल में तथा देवरिया जिलों में न्यूनतम आय कितनी कम है। वह समाचार जब लोहिया की आंख से निकला तो उन्होंने लोकसभा में दो आने रोज़ की मज़दूरी को लेकर योजना मंत्री श्री गुलज़ारी लाल नंदा के लिए जो मुसीबत पैदा कर दी, वह संसदीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना बन गयी। इसी प्रकार मेरी पुस्तक 'चीन में विस्तारवाद के दो हज़ार वर्ष' की समीक्षा उन्होंने 'जन पत्रिका' में स्वयं लिखी और पुस्तक का समर्थन किया। तब मुझे खयाल हुआ कि डा० लोहिया की निगाह कितनी चौकस है और छोटे से छोटे व्यक्ति के प्रति भी वे कितना सम्मान रखते हैं और उसे प्रकट भी करते हैं। यही कारण है कि जब डा० राममनोहर लोहिया की असामयिक मृत्यु हुई तो भारत का एक समाजवादी शिखर धड़ाम हो गया।

भाग तीन

# जीवन-दर्शन

(लोक सभा में डा० राममनोहर लोहिया द्वारा दिये गये कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धृत अंश)

# 5
# राष्ट्रीय आय का वितरण*

अभी तक इस बहस का नतीजा इतना निकला है कि मैंने 27 करोड़ हिन्दुस्तानियों के लिए तीन आने रोज की आमदनी कही, प्रधान मंत्री ने 15 आने रोज़ की और योजना मंत्री ने साढ़े सात आने रोज़ की। अब प्रधान मंत्री और योजना मंत्री आपस में निबट लेंगे कि दोनों में कौन सही है।

मेरी बहस यह नहीं है कि हिन्दुस्तानियों की और खास तौर से 27 करोड़ की आमदनी तीन आने या साढ़े तीन आने या ढाई आने है। बल्कि यह देश इतना गरीब है जिस का अंदाजा इस सरकार को नहीं है, और इस गरीबी को दूर करने के लिए जब तक इस सरकार में भावना नहीं आएगी, तब तक कोई अच्छा नुस्खा तैयार नहीं हो सकता।

पहली बात तो मुझे कहनी है, जो आंकड़े योजना मंत्री ने यहां रखे उन के बारे में, कि वह कर जांच कमेटी के लिए तैयार किए गए थे। वित्त मंत्रालय ने पूछा था कि किस तरह से हिन्दुस्तान के लोगों की आमदनी है और खपत है ताकि वह कर अच्छा और ज्यादा लगा सकें। इसलिए इस जांच समिति के आंकड़े पहले से ही संदेहात्मक थे क्योंकि उन का तात्पर्य ही कुछ और था। .....वह दिखाना चाहते थे कि हिन्दुस्तानी ज्यादा खर्च करते हैं, इसलिए उन के ऊपर ज्यादा टैक्स लगाओ। बिल्कुल साफ बात है, छपा हुआ है किताब में। जो सेंट्रल सर्वे छापता है। उस में लिखा है कि वह टैक्सेशन एनक्वायरी कमेटी की तरफ से कहा गया है ताकि फाइनेंस मिनिस्ट्री उस से अपना कम्म काज चला सके।

और दूसरी बात यह है कि सन् 1948-49 की जो आधार कीमतें हैं उन को छोड़कर अक्सर चालू कीमतें ले ली जाया करती हैं, और इस तरह की एक रुकावट मेरे सामने और आ जाती है कि ये अंक शास्त्री लोग कौन हैं। जिस वक्त बंगाल में पचास लाख आदमी भूख से मरे थे, उस वक्त इन अंक शास्त्रियों ने साबित किया था कि खाली पांच

* लोक सभा वाद-विवाद, 6 सितम्बर, 1963

लाख मरे हैं। तो इसलिए मंत्रियों को बड़ा सावधान रहना चाहिए, और उन्हें कोई दिशा देनी चाहिए। मैं कोशिश करूंगा कि इन अंकों को, जहां तक हो सके, अपने दिमाग को लगा कर के भी इस्तेमाल करूं। तो पहली बात मुझे यह कहनी है। और दूसरे योजना मंत्री ने जो आंकड़े दिये उस के अनुसार देहाती खपत 87 अरब रुपये की हो जाती है। ...और जो हमारी राष्ट्रीय आमदनी खेती से है जिसमें कि मैं पशुधन को शामिल किये लेता हूं वह कुल 66 अरब या 6600 करोड़ रुपये की है। तो 6600 करोड़ रुपये की देहाती आमदनी और 8700 करोड़ रुपये का खर्चा यह योजना मंत्री के आंकड़ों से बिल्कुल साफ साबित होता है। वैसे मुझे चाहिए कि खेती की आमदनी में से पशुधन की रक़म अलग कर लूं लेकिन उस को बिना अलग किये हुए ही 2000 करोड़ रुपये का फर्क पड़ता है। एक माने में 3000-3500 करोड़ रुपये का फर्क पड़ जाता है, जो दो हिसाब दिये हैं उन में। हो सकता है कि सरकार की तरफ़ से यह कहा जाय कि आमदनी में और खर्चे में फर्क है क्योंकि खर्चे में दान भी जोड़ लिये जाते हैं कर्जा भी जोड़ लिया जाता है। अब इस के बारे में मैं यह कहना चाहूंगा कि लगातार कर्ज़ा नहीं चल सकता है। कर्जा तो 2, 4, 5 या 10 वर्ष की चीज़ होती है। आखिर कर्ज़ा और खर्चा यह किसी न किसी तरीके से एक होना ही चाहिए, थोड़ा बहुत फर्क चाहे रहे।

एक बहुत बड़ी गलती इन उपभोक्ता आंकड़ों में होती है और वह यह कि इन में मूल्य फर्क जोड़ लिया जाता है? मिसाल के लिये मैं आप को बतलाऊं कि ईंधन और रोशनी पर 13वें चक्र के आंकड़े हैं जो छप चुके हैं और योजना मंत्री ने 17वें चक्र के बताये, उन के लिये हमारे पास कोई आधार नहीं है। 13वें चक्र में मैं बतला रहा हूं कि ईंधन और रोशनी पर नक़द खर्चा सब से नीचे के लोगों पर 20 पैसे रखा गया है और खर्चा रखा गया है 91 पैसे। 20 पैसे और 91 पैसे। इसी तरीके से एक और समूह रखा है। नक़द खर्चा 28 पैसे और दूसरा कुल खर्चा 1 रुपये 2 पैसे। चीनी के लिए 15 पैसे नक़द खर्चा है और दूसरा खर्चा 19 पैसे रख दिया गया है। इस तरीक़े से कुल खर्चे को बढ़ा दिया जाता है लेकिन कितना भी बढ़ायें 6600 से 8700 तक बढ़ा देंगे, मैं समझता हूं कि यह बहुत ही अनुचित काम है।

मैं एक दूसरा तरीक़ा बतलाऊंगा उस हिसाब को लगाने के लिए और वह यह है कि सन् 1960-61 में हिन्दुस्तान के 32 करोड़ खेतिहारों को जो देहात में रहते हैं, 45 पैसे रोज़ की आमदनी पड़ती थी। आज 61-62 में 35 करोड़ खेतिहारों को 43 नये पैसे रोज़ के हिसाब से हो गयी। अब यह हिसाब मैंने कैसे लगाया है, वह तो एक लम्बा क़िस्सा होगा, खाली इतना ही बतला दूं कि यह सरकार के आंकड़ों से ही हिसाब लगाया गया है, 45 पैसे रोज़ और 43 नये पैसे का। यह साधारण तौर से मान लिया जाता है कि जो

ऊपर के 10 सैकड़ा लोग हैं वह उन की पूरी आमदनी का 50 सैकड़ा ले लिया करते हैं जिसका कि नतीजा यह होता है कि 60-61 में खेतिहारों को 25 पैसे रोज़ की आमदनी थी और 61-62 में 23 पैसे रोज़ की आमदनी थी, यह सरकार के आंकड़ों से सिद्ध होता है। अगर मान लीजिये इन में पशुधन की आमदनी जोड़ भी ली जाये तो 27 पैसे रोज़ की आमदनी यानी साढ़े चार आने की आमदनी पड़ती है। लेकिन पशुधन जोड़ना नहीं चाहिए क्योंकि जिन लोगों के बारे में मैं चर्चा कर रहा हूं वह इस हैसियत में नहीं हैं कि पशु वगैरह रख कर अपनी आमदनी को बढ़ा लिया करें। इसलिए जो सरकार के अपने आंकड़े हैं उन से यह सिद्ध होता है 27 करोड़ से ज्यादा आमदनी 4 आने रोज़ के ऊपर जिंदा रहते हैं। यह जो राष्ट्रीय आमदनी के आंकड़े सरकार की तरफ से छपे हैं, उन के बारे में मैं कह रहा हूं।

इस सिलसिले में मैं एक थोड़ी सी जानकारी जो मैंने हासिल की वह बतलाना चाहूंगा। अब वह कहां तक सही है या ग़लत है यह मैं नहीं कह सकता। बहर हाल मैं आप को बतलाता हूं कि जब से यह राष्ट्रीय आमदनी का सिलसिला सरकार ने चलाया है तब से शुरू से ही 20 सैकड़े की बढ़ती कर दी गई है चाहे जिस इरादे से की गई हो। बढ़ती इसलिए भी की जा सकती है कि हिन्दुस्तान को ज्यादा अमीर दिखाना है जितना कि वह है। दूसरे इसलिए भी हो सकती है कि सरकार को यह कर लगाने की सुविधा हासिल करनी है और यह सब को मालूम है कि जो भी आंकड़े हमारे असली हैं उन में 20 सैकड़े की बढ़ती कर के यह सारे आंकड़े छापे जाते हैं।

अब मैं आप से एक और बात बतलाता हूं और वह है गरीब प्रदेशों की दर, जिन आंकड़ों को योजना मंत्री ने रखा था और वह दूसरे सैशंस जनगणना वाले आंकड़े थे। उस में उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश यह 6 हिन्दुस्तान के सब से गरीब इलाके हैं। उन की कुल देहाती जनसंख्या 20 करोड़ होती है वैसे तो कुल 23 करोड़ है। मुझे उत्तर प्रदेश का एक आंकड़ा मालूम है। सरकार ने वह आंकड़े हर साल छापे हैं। एक बार तो 182 रुपया फ़ी आदमी हर साल देहात की आमदनी थी और वही अगर तर्क लगाया जाय कि ऊपर का 10 सैकड़ा 50 सैकड़ा आमदनी हज्म कर लेता है या दूसरा तर्क जोकि मैं लगाता हूं कि उपभोक्ता जरीप से ले कर ऊपर का 20 सैकड़ा खा लेता है 60 सैकड़ा और नीचे के 80 सैकड़ा के लिए केवल 40 सैकड़ा बच जाता है। यह आंकड़े मैंने खुद सरकार की किताब से लिये हैं। यह बात दूसरी है कि आंकड़े दूसरे के हैं, अलबत्ता जो कुछ हिसाब मैंने लगाया है वह मेरा अपना है। मैं सरकार को सलाह दूंगा कि विशेषज्ञों के आंकड़ों को वह इस तरीके से इस्तेमाल न करे बल्कि किसी दिशा के साथ करे। बिना दिशा के इस्तेमाल करने का नतीजा खराब हो

सकता है। इसलिए यह जो 182 रुपया फ्री आदमी की हर साल उत्तर प्रदेश के देहात की आमदनी है वह अगर 50 सैकड़े वाला घटा दिया जाता है तो 101 रुपये हो जाती है और अगर 60 सैकड़ा ले लिया जाता है तो 91 रुपये हो जाती है। इस के मानी यह हुए कि वह चार आने के नीचे रहता है। 4 आने के नीचे खुद सरकार के आंकड़ों से 27 करोड़ से ज्यादा लोगों की आमदनी रह जाती है यह तो बिल्कुल सिद्ध हो जाता है फिर उस के बाद 193 रुपये की भी रक़म दी गई है फ्री आदमी पीछे और वह थोड़ी सी बढ़ सके तो वह चार आने रहेगी या साढ़े तीन आने या सवा चार आने होगी। इस से ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा। यह मैंने उत्तर प्रदेश के बारे में कहा है... जोकि इतना गरीब सूबा है। उस के साथ-साथ उड़ीसा, मध्यप्रदेश, बिहार और राजस्थान यह सब भी उसी हालत में पड़े हुए हैं और करोड़ों लोग मैंने आप से बतलाया, 20 करोड़ देहाती, उन में से या तो आप घटा दीजिये 10 सैकड़े के हिसाब से 2 करोड़ और 20 सैकड़े के हिसाब से 4 करोड़ हुए, तो यह 18 करोड़ या 16 करोड़ लोग सरकार के अपने आंकड़ों के मुताबिक चार आने या साढ़े तीन आने रोज पर अपनी ज़िन्दगी चला रहे हैं।

....प्रधान मंत्री ने 22 अगस्त, सन् 1960 को कहा था, कि राष्ट्रीय आय में 42 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति आय में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई। फिर उन्हें बड़ा अचरज हुआ कि यह बढ़ती चली कहां गई? तो सच पूछो एक माने में वह पहले ही इसे मान चुके हैं कि उन्हें पता नहीं कि कहां चली गई यह बढ़ती। तब उन्होंने यह 14 अक्तूबर सन् 1960 को आय वितरण समिति बनाई थी। अब मेरा सवाल है कि वह समिति कहां चली गई? इस सवाल पर कुछ थोड़ी सी तफ़सील की बात मैं आगे बतलाऊंगा लेकिन पहले एक और चीज़ के ऊपर मैं आप का ध्यान खींच दूं कि हिन्दुस्तान में एक एकड़ से कम खेती करने वाले 34 सैकड़ा कुटुम्ब हैं और 14 सैकड़ा ज़मीन एक सैकड़ा कुटुम्ब के पास चली जाती है। इस आंकड़े से कुछ खतरनाक नतीजा निकलता है। मैंने तो 27 करोड़ के लिए 3 आने वाली बात कही थी। अब मैं यहां कहना चाहता हूं कि 10 से 15 करोड़ हिन्दुस्तानी सिर्फ़ 2 आने की आय पर रहते हैं। मेरे पास खत आये हैं, बहुतेरे खत आये हैं कि यह तुम ने तीन आने कह कर कैसा अन्याय कर दिया? अगर इस तरह के आंकड़े को दूसरे ढंग से भी साबित करना चाहें तो खेतिहर मज़दूरों की संख्या करीब 7 करोड़ है। इन में से 1 या आधा करोड़ घटा दीजिये जो शायद ऊंची अवस्था में हों।

फिर छोटे किसान की संख्या मालूम है, ढाई एकड़ तक के किसानों की संख्या कम से कम 15-16 करोड़ होगी। फिर कारीगरों की संख्या मालूम है। वह भी 2,3 करोड़ होगी। फिर शहर के अन्दर 20 से 25 सैकड़ा लोग ऐसे हैं जोकि बड़ी मुश्किल से जिंदगी बसर करते हैं। मुश्किल से क्या, वह कैसे जिंदा रहते हैं, मुझे नहीं मालूम। वे बेचारे पगपथ

पर और झुग्गी झोंपड़ियों में रहते हैं और शहर के कूड़ेदानों पर जा कर उस में से दाने बीन बीन कर किसी तरह से अपनी जिंदगी बसर करते हैं। और जो लोग देहात से आ कर यहां आमदनी करते भी हैं, वे खुद बहुत कम खर्च करते हैं, क्योंकि अपने देहाती आदमियों को उन्हें पालना होता है। फिर आदिवासी हैं, विधवायें हैं, और अगर मैं कहूं, तो फक्कड़ साधू हैं—सरकारी साधू नहीं। इन सब को मिला कर कोई 27—30 करोड़ आदमी आ जाते हैं।

अगर इन आंकड़ों के अलावा मैं आंखों देखी हालत बताऊं, जोकि प्रधान मंत्री, योजना मंत्री और सरकार को अपने सामने रखनी चाहिए, तो वह यह है। मैंने बनारस में गाय को मुर्दे का मांस खाते देखा है इस सरकार में। मैंने उड़ीसा में, जहां मछलियां बिल्कुल नहीं रह गई थीं, बहुत मामूली थीं, सैकड़ों लोगों को जाल फैंक कर मछली पकड़ते देखा है। मैंने तामिलनाडु में सेलम में लाखों कारीगरों को दस आने, बारह आने, चौदह आने रोज़ कमाते देखा है और सुना है और अगर वह हिसाब भी लगाया जाये, तो तीन आने से कम पड़ता जाता है। इसी तरह से और जो भी हमारी जनसंख्या के छोटे वर्ग हैं, अगर हम उन की तरफ़ ध्यान देंगे, तो आमदनी उतनी ही आ जायेगी....

ये खुद सरकार के ही आंकड़े हैं। इन सरकारी अंक-शास्त्रियों में कुछ होड़ भी चला करती है। एक संस्था यहां दिल्ली में ही काम करती है, जिस को कहते हैं आर्थिक जांच की राष्ट्रीय कौंसिल। उस ने 29 जिलों के नाम दिये हैं, जिस में कुछ जिले हैं—बहुत सम्भल कर बोलना पड़ता है— जो 100 रुपये के नीचे जाते हैं। दरभंगाः 96 रुपये फ़ी आदमी, सारन, छपराः 96 रुपये फ़ी आदमी, देवरियाः 98 रुपये फ़ी आदमी, टेहरी गढ़वालः 84 रुपये फ़ी आदमी। अगर वही तरीका यहां भी लागू किया जाय, जो मैंने पहले दिया था कि ऊपर के 10 सैकड़ा के लिए 50 सैकड़ा निकाल दो और अगर इस खपत जरीब के ज़रिये 20 सैकड़ा के लिए 60 सैकड़ा निकाल दो, तो फिर इन ज़िलों की आमदनी तीन आने फ़ी आदमी रोज से भी कम पड़ती है। मैंने चार के ही नाम गिनाये हैं। और इस तरह के चालीस के करीब हैं, जोकि 110, 120 और 125 रुपये की आमदनी वाले हैं....

जीवन स्तर कितना नीचे गिरता जा रहा है, यह इस तेरहवें चक्र से साबित होता है कि करीब 30 सैकड़ा आबादी का खर्चा 1952 में पड़ता था 10 रुपये 28 नये पैसे—यह मैं सरकार वाले आंकड़े दे रहा हूं—और 1957-58 में वह घट कर 10 रुपये, 14 नये पैसे हो गया। प्रधान मंत्री जी अपनी किताबों को खुद पढ़ लिया करें, तो उन को पता चल जाये कि चीज़ें घटती रहती हैं। 15 रुपये, 70 नये पैसे था और तीस सैकड़ा घरों के लिए, जो घट कर 14 रुपये, 50 नये पैसे हो गया। सिर्फ 2 सैकड़ा घरों का खर्चा 45

रुपये से बढ़ कर के 48 रुपये हुआ है। यह जीवन-स्तर घटता चला जा रहा है।

जहां तक राष्ट्रीय आमदनी का सवाल है, वह पहले 7 रुपये फ्री आदमी हर साल बढ़ा करती थी। वह अब बन्द हो गई है, ऐसा मेरा हिसाब बताता है, जो दो नये पैसे प्रति व्यक्ति होता है—दो नये पैसे फ्री आदमी फ्री साल, अगर इस रफ़्तार से हम लोग चलते गये, तो न जाने हम को किस किस का शिकार होना पड़ेगा, सिर्फ चीन का ही नहीं। दूसरे देशों में घाना और चीन की बात मैं खास तौर से कहूंगा, रूस और अमरीका की नहीं। घाना में करीब 30-40 रुपये फ्री साल फ्री आदमी के हिसाब से बढ़ रहा है और चीन 50-60 रुपये फ्री आदमी फ्री साल। हम क्यों बंध गये? इस का कारण यह है कि खपत का आधुनिकीकरण हमारे यहां हुआ और पैदावार के आधुनिकीकरण को किये बगैर हम ने यूरोप और अमरीका की नकल करना शुरू कर दिया। नेताओं, नगर सेठों और नौकरशाहों का जीवन स्तर तो उठता चला गया। ताकि वे यूरोप और अमरीका के बराबर आ जायें, लेकिन साधारण जनता का जीवन स्तर नहीं उठ पाया।

दो तीन लाख हर साल साहब बनते हैं, यह इस योजना का परिणाम जरूर होता है और वहां बहुत काफी हिस्सा बढ़ती हुई आमदनी का चला जाता है। मेरे हिसाब से इस वक्त पचास लाख बड़े लोग हैं और हर साल तीन लाख साहब या बड़े लोग बनते हैं। पिछले बारह पंद्रह बरस से तीन लाख साहब बड़े साहब हो गये हैं एक माने में कहा जाये तो अंग्रेजों की सरकार तो तीन लाख लोगों की सरकार थी और यह सरकार पचास लाख लोगों की सरकार है।

अगर आमदनी के आंकड़े, आय-कर, को भी आप देखें, तो पता चलता है कि 9,52,000 आदमी कर देते हैं, जिन के ऊपर दो अरब का कर है और बारह अरब आमदनी है। लेकिन हर एक जानता है कि कम से कम उतनी ही रकम और है मुनाफा की या दूसरी तरह से सुविधा वगैरह की, जोकि मंत्रियों वगैरह को मिलती है। तो सब मिला कर करीब 25 अरब रुपया है। यह 25 अरब रुपया केवल एक सैकड़ा आदमी ले लेते हैं, यह सरकारी आंकड़ों से सिद्ध होता है। मेरे आंकड़े तो खैर और ज्यादा आगे जाते हैं।

मैं समझता हूं कि आसानी से 10-12 अरब रुपया एक हिसाब से और 15-20 अरब रुपया दूसरे हिसाब से बचाया जा सकता है इस खपत के आधुनिकीकरण से, जिस से सरकार का भी काम ठीक चल सकता है, लोगों के ऊपर करों का बोझा कम हो सकता है और खेती, कारखानों का पंजीकरण भी ज्यादा अच्छा हो सकता है। लेकिन यह वही कर सकता है, जो इस दर्द को जाने।

यह विशेषज्ञों की सरकार हो गई है और दिशाहीन विशेषज्ञों की। कोई भी पुर्जा मंत्री को बढ़ा देता है और मंत्री बगैर सोचे समझे उस को पढ़ देता है, क्योंकि मंत्री बेचारों को कुछ पता ही नहीं होता है कि क्या खेती है, क्या कारखाने हैं, क्या राष्ट्रीय आमदनी है। मंत्रियों को खुद अपना दिमाग लगाना चाहिए। इन बातों के ऊपर सोच विचार कर उन्हें दिशा बतानी चाहिए, क्योंकि अंक शास्त्री और अर्थ शास्त्री तो विषधर की तरह हैं और बीन जिस तरह की बजाओगे, उसी तरह से वह नाचने लग जायेगा और अगर बीन बजाना ही नहीं जानते हो, तो फिर नतीजा क्या निकल सकता है?

मैं दावे के साथ कहना चाहता हूं कि अगर हिन्दुस्तान की आमदनी के बंटवारे को ठीक किया गया, तो बीस रुपया हर साल की वृद्धि की जा सकती है और कोई मामूली अक्ल के आदमी भी इस काम को कर सकते हैं, लेकिन तब जब बढ़ती के सब हिस्सेदार हों।

# 6

# सरकारी उपक्रम समिति सम्बन्धी प्रस्ताव*

एक घंटे से कमेटी पर बहस चल रही है। उससे हम सभों को एक बात लगी होगी कि लोक सभा में रूप पर ज्यादा बहस होती है, सार पर कम। अगर हम लोग इस पर ध्यान रखें कि सार पर ज्यादा बहस किया करें तो उससे देश को ज्यादा अच्छा फल मिले।

मैंने कल श्री दाजी के भाषण को ध्यान से सुना यह समझने के लिए कि कम्युनिस्टों या उनके समर्थकों का क्या रुख है। उन्होंने लोक दायरे के कारखानों की आरती तो जरूर उतारी लेकिन अपने सभी तर्क से साबित किया कि जितनी जल्दी यह लोक दायरा खत्म हो जाए उतना अच्छा है। यह कैसे होता है, यह जानने की जब मैंने कोशिश की तो फिर मुझे एकाएक कानूनगो साहब के भी भाषण की याद पड़ी। उन्होंने अपने भाषण में जो कुछ उदाहरण दिये, इंग्लिस्तान के दिये और वहां की लोक सभा के दिये। जब कि बहस हो रही थी लोक दायरे पर, सरकारी कारखानों पर, तो उन्हें ज्यादा सोचना चाहिये था सोवियत रूस के उदाहरणों और बातों पर। लेकिन कुछ हम लोगों का तरीका ही ऐसा हो गया है कि हम बहुत ज्यादा लोक दायरा और निजी हमारा मिला जुला करके सोचा करते हैं और किसी परिणाम पर नहीं निकल पाते। यह भी हो सकता है कि रूस की बातें अगर ज्यादा यहां होतीं तो शायद रूस की और भी बातें सामने आतीं वहां अत्याचार जरूर है और मैं उनको कतई पसन्द नहीं करता हूं लेकिन जिस ढंग से सरकारी कारखाने यहां चलाये जा रहे हैं उस ढंग से अगर वहां चलाये गये होते तो क्या होता। इन मंत्रियों और इन मैनेजरों का, यह कहना बड़ा कठिन है। कुछ थोड़ा बहुत जो मैं प्रधान मंत्री के सुकर्मों या कुकर्मों के बारे में बोलूंगा तो बताने की कोशिश करुंगा कि उनका क्या भाग्य होता रूस में। अभी खाली मैं इतना बता देता हूं कि हमारी हमेशा ही आदत के मुताबिक हमने लोक दायरे और निजी दायरे को एक दूसरे से बहुत सिखाया पढ़ाया है। दुनिया भर में निजी दायरा इन्तिजाम के मामले में ज्यादा अच्छा होता है, लेकिन लालच के मामले में ज्यादा खराब होता है, और सार्वजनिक दायरा, सरकारी कारखाने, बदइन्तजामी बहुत ज्यादा

*लोक सभा वाद-विवाद, 19 व 20 नवम्बर 1963

करते हैं, लेकिन उनमें कर्तव्य की भावना ज्यादा होती है। यह दुनिया भर का फर्क है। लेकिन हम हिन्दुस्तानी तो समन्वय किया करते हैं। इसलिए हमारे यहां के निजी दायरे के कारखाने, करोड़-पतियों के कारखाने, इन्तिजाम में भी बिगड़ते चले जा रहे हैं, और नफ़ा और लूट तो करते ही हैं, और इसी तरह से सार्वजनिक दायरे के कारखाने, जहां एक तरफ इन्तिजाम में बहुत बिगड़े हुए हैं, वहां दूसरी तरफ करोड़ पतियों के कारखानों की लूट करने की आदत भी सीखते चले जा रहे हैं। यह एक बड़ा जबरदस्त समन्वय अपने देश में चल पड़ा है, और जब तक हम इस बुनियादी तथ्य को नहीं समझेंगे कि लोक दायरे के कारखाने तभी अच्छे चल सकते हैं जब लोक भावना हो और जो हमारे सभी जीवन के लक्ष्य हैं वे बदल जाते हैं, तब तक ये कारखाने कुछ फायदा नहीं पहुंचायेंगे।

अब मैं यह मान कर चलता हूं कि जो हमारी समन्वयी चीज है यहां सरकारी कारखानों के बारे में उसको छोड़कर के सरकार ध्यान देगी कि ये लोक कारखाने निजी कारखानों से अलाहिदा चलाए जाने चाहिए। अगर उसी ढंग पर चलाना है तो इनकी क्या जरूरत पड़ी हुई है। और मैंने इस बहस में यह भी देखा कि करीब करीब एक ही तरह की कसौटी रख कर दोनों को आंका जाता है। लोक कारखानों के लिए कसौटियां भी अलाहिदा होनी चाहिए, और मैं कुछ बुनियादी कसौटियां आपके सामने रखता हूं।

पहली कसौटी यह है कि औद्योगीकरण के फैलाव में सरकारी कारखानों की ज्यादा मदद हो सकती है बनिस्बत करोड़पतियों के कारखानों के। हमारी उन्नति का दर बहुत नीचा है। पूंजी इकट्ठी नहीं हो पाती, सरकारी कारखानों में मुनाफे की गुंजाइश नहीं है—कम से कम करोड़पतियों के मुनाफे की—इसलिए जो कुछ सरकारी कारखानों का मुनाफा हो वह और ज्यादा कारखाने खोलने में इस्तेमाल हो सकता है, और इसलिए सरकारी कारखानों की पहली कसौटी है कि हिन्दुस्तान के औद्योगीकरण में वह कितनी ज्यादा मदद पहुंचाते हैं।

मैं इस बात को साफ कर देना चाहता हूं। मेरा मतलब व्यापार के फैलाव से नहीं है, जैसा कि जीवन बीमा निगम ने किया है। उसने अपने व्यापार का फैलाव कर लिया है। उससे मुझको मतलब नहीं है मेरा मतलब है कि जीवन बीमा निगम से सरकार के कारखानों को इतना ज्यादा फायदा होना चाहिए कि वह हिन्दुस्तान के औद्योगीकरण की गति को बढ़ा सके। यह पहली कसौटी है।

दूसरी कसौटी है कि लोक कारखानों के जरिए देश में समाजवाद के बढ़ाने का मौका होना चाहिए। बंटवारा ज्यादा बराबरी के आधार पर होना चाहिए। जिस तरह से करोड़पतियों के कारखानों में मजदूर और मालिक के बीच में या उपभोक्ता और मालिक

के बीच में फर्क लूट के कारण हो जाता है वह लोक कारखानों में न होना चाहिए और वहां जो बटवारे के इन्तिजाम किए जाते हैं वे ऐसे होने चाहिए कि जिससे बराबरी को प्रोत्साहन मिले। यह वह फर्क बता रहा हूं कसौटियों का कि जो दोनों कारखानों के सम्बन्ध में है।

इसी तरह से तीसरी कसौटी रखना चाहता हूं कि जो मजदूर और मालिक का रिश्ता है—वैसे खैर करोड़पतियों के कारखानों में भी अच्छा ही होना चाहिए—लोक कारखानों में ज्यादा लोकतन्त्री होना चाहिए और देश के पूरे लोकतन्त्र को भी इन कारखानों को मदद देनी चाहिए।

चौथी कसौटी में रख रहा हूं कि ये लोक कारखाने कितना ज्यादा लोक हित को बढ़ाते हैं। लोक हित में ऐसे प्रश्न आते हैं जैसे चीजों के दाम या किस ढंग से जनता को सुविधा मिलती है या नहीं मिलती या तरद्दुद होता है।

पांचवी कसौटी रखना चाहता हूं कि इन कारखानों का इन्तिजाम अच्छा होना चाहिए। योग्य आदमी होने चाहिए जोकि कानून को तोड़ें नहीं और दर असल व्यापार के फैलाव और औद्योगीकरण के फैलाव का ध्यान रखें न कि अपने पेट और धन की लिप्सा में पड़े रहें...

...वेतन का अन्तर नहीं होना चाहिए। मैंने कहा है कि बटवारे में बराबरी होनी चाहिए। स्वामी जी ने यह बहुत अच्छी बात कही है। इसलिए मैं दूसरी कसौटी को पहले ले लेता हूं और कुछ उदाहरण देता हूं, जिनके बारे में मैं कानूनगो साहब से अर्ज़ करूंगा कि वह अच्छी तरह से तहकीकात करके लोक सभा को बतायें कि क्या बात है।

अब साहब राउरकेला का इस्पात कारखाना है। उसके पूरे अंक तो मैं नहीं दे सकता। मैंने कुछ हिसाब लगाया था। कई घंटों की जांच के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि एक हजार अफसर करीब बीस लाख रुपये महीने में नौकरी और सुविधा के रूप में पा जाते हैं और तीस हजार मजदूर महीने भर में तीस लाख रुपया पाते हैं। यह इतनी जबरदस्त विषमता है कि मैंने एक बार प्रश्न किया था कि क्या टाटा नगर में इससे ज्यादा विषमता है, और वहां के बारे में मैं केवल अन्दाजे से ही कह सकता हूं कि वहां भी इतनी ज्यादा विषमता नहीं होगी। गैर बराबरी सरकारी कारखानों में उतनी ही है, शायद ज्यादा है, क्योंकि देखने का ढंग अभी बिल्कुल बिगड़ा हुआ है। और जब मैं यह बात कहता हूं तो सिर्फ राउरकेला के इस्पात कारखाने के बारे में ही नहीं सभी कारखानों की। और इन अंकों के पीछे अनुपात पर आप ज्यादा ध्यान देना, अंकों पर नहीं। अनुपात यह है कि एक हजार अफसर 20 लाख रुपया महीना, और तीस हजार मजदूर 30 लाख रुपया महीना।

इसी तरह से मैं आपको जीवन बीमा निगम के मकानों के किरायों के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं। जो जीवन बीमा निगम अपने नौकरों या अर्ध नौकरों को मकानों के सम्बन्ध में सुविधा देता है। करीब दो हज़ार अफसर हैं। इन के किराये को अगर मैं जोड़ने लगूं तो कुछ अन्दाजा नहीं मिलेगा। हज़ारों रुपया, कहीं कोई जांच नहीं, कहीं कोई तहकीकात नहीं, बड़े बड़े मकान, क्या क्या उनके किराये रहते हैं इसका कोई पता नहीं। और 35 हज़ार जो स्टाफ के आदमी हैं उनको 15 रुपया महीना की किराये की सहायता मिलती है। और सात हज़ार फील्ड वर्कर हैं उनको कुछ नहीं मिलता और ढाई लाख एजेंट्स हैं उनको कुछ नहीं मिलता। ये 4 किस्म के लोग हैं जिनमें ढाई लाख एजेंट और 7 हज़ार और लोग, करीब पौने तीन लाख आदमी हैं...

...मैं तो एक उदाहरण दे रहा हूं कि किस तरह से आप गैर बराबरी के आधार पर इन्तिजाम चलाते हैं। बिड़ला और टाटा के कारखानों में अगर ऐसी गैर बराबरी होती है तो हम उसके ऊपर आपत्ति करते हैं, और यह सरकार जिन कारखानों को और जिन प्रकरणों को चलाती है वहां पर गैर बराबरी को देख कर तो बहुत तकलीफ और दुःख होता है।

...निजी धंधों ने सरकारी धंधों से बदइन्तजामी सीखी है और सरकारी धंधों ने निजी धंधों से लूट सीखी है जिसका नतीजा हुआ है कि मुझे श्री बिड़ला के धंधों में और श्री नेहरू के धंधों में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। निजी धंधों की आत्मा और उसका शरीर सरकारी धंधों के अन्दर है। खाली सरकारी धंधे एक ओढ़नी ओढ़ कर रहते हैं सार्वजनिकता की, लोकप्रियता की लेकिन इसका नतीजा बहुत खतरनाक हुआ है। मैं आपका ध्यान खींच रहा था उन उपायों की तरफ जिनसे सरकारी धंधों की आत्मा पवित्र बनाई जा सकती है।

एक उपाय मैंने समता के चित्र का बताया था और कुछ उदाहरण इसके बताये थे। मैं अर्ज़ करता हूं कि अंकों के अनुपात पर सोचा जाए, अंकों पर नहीं। उन अंकों को ज्यादा बढ़ाने के लिए अब मैं सुविधा की तरफ आपका ध्यान खींचता हूं। कुछ लोग केवल नौकरी पर ध्यान देते हैं, सुविधा पर नहीं। लेकिन मैं आपको बताऊं कि एक अफसर जो अढ़ाई हजार रुपये महीना कमाता है, सुविधा के रूप में साधारण तौर पर दस हजार रुपया राज्य का खर्च करता है। इसमें मैं बहुत ऊंचे जो लोग हैं, उनकी सुविधा को नहीं ले रहा हूं। वह लाखों में मामला जाता है। यह मैं एक औसत बात बता रहा हूं। मैं कहता हूं कि जब कभी गैरबराबरी की बात आप किया करें तो कम से कम हिन्दुस्तान में केवल वेतनों के फर्क की बात न किया करें। वेतनों को छोड़कर बड़े लोग अपने लिए चौगनी और छः गुनी सुविधायें ले लिया करते हैं और उन सुविधाओं के रहते बहुत कुछ

कानून भंग भी हुआ करता है।

अध्यक्ष महोदय, मैं उन लोगों के नाम नहीं लूंगा। खाली मैं इतना बताये देता हूं कि किस तरह से कानून भंग होता है। एक बहुत बड़ा सरकारी अफसर है इन सरकारी धंधों वाला जो दिल्ली में काम करने लग गया। अपने कुटुम्ब के लिए उसने बम्बई में सरकारी खर्चे से बंगला रखा। उसी तरह से एक बड़ा अफसर है जो हमेशा यहां बम्बई से दिल्ली टेलीफोन किया करता है व्यक्तिगत मामलों में और वह अफसर हर हफ्ते एक बार हवाई जहाज में यहां सफर भी किया करता है।

उसी तरह से रोमानिया और हिन्दुस्तान के मामले में जो समझौतों का तोड़ हुआ, उस पर मैं आपका ध्यान खींचता हूं। गोहाटी में जो तेल साफ होता है, वहां की केरोसीन इकाई जो है, वह बहुत दिनों से बन्द पड़ी है, कभी साल भर में 80 दिन काम करती है, कभी 50 दिन काम करती है। आजकल भी बिल्कुल बन्द है। मुझे इत्तिला मिली है कि रोमानिया और हिन्दुस्तान का जो समझौता हुआ था उस समझौते की शर्तों को तोड़ करके और जंग लगा माल ले कर यह सारा कारखाना कायम किया गया है। मैं नहीं कह सकता हूं कि कौन सी सुविधा हिन्दुस्तानी अफसरों को मिली और अगर मिली तो बड़ी खतरनाक सुविधा रही होगी। कानून बहुत ज्यादा टूट रहा है। मैं आपको और भी बहुत से उदाहरण दे सकता हूं लेकिन इसको बन्द करके खाली मैं इतना कहना चाहता हूं सरकारी धंधों के सम्बन्ध में कि यह त्रुटि सारी दुनिया में देखी गई है कि अब अफसर कानून तोड़ते हैं और एक दूसरे को बचाने की कोशिश करते हैं। रूस को भी इसका बहुत ज्यादा सामना करना पड़ा था। ये सुविधायें बन्द करना मुश्किल है क्योंकि सरकार की एक मंशा है कि वह भी अपने अफसरों को उसी तरह रखे जिस तरह से निजी धंधे वाले अपने अफसरों को रखते हैं। मैंने सुना है कि कई बार प्रधान मंत्री ने कहा है कि अगर टाटा, बिड़ला आदि अपने अफसरों को शान से रखते हैं तो हिन्दुस्तान का राज भी अपने अफसरों को शान से रखना चाहता है। मैं कहना चाहता हूं कि यही सब से बड़ी खराबी है कि शौकीनी और फिजूल खर्ची का मन बनता चला जा रहा है, समता का मन नहीं। इसका सब से बड़ा उदाहरण स्वयं प्रधान मंत्री देते हैं। वह हमारे सरकारी धंधों का उद्घाटन करते हैं और जब वह या उनके जैसा कोई मंत्री जाता है तो वह देखे कि कितना खर्च होता है। एक बार सिर्फ उन्होंने कहा कि अब से मैं उद्घाटन नहीं किया करूंगा कोई मजदूर उद्घाटन करेगा और एक मजदूरनी ने उनके सामने उद्घाटन भी किया। वह ढोंग फिर बाद में कभी नहीं हुआ है। वह हमेशा उद्घाटन के लिए पहुंच जाते हैं और खर्च करते हैं।

मैं आपका ध्यान खींचूं कि हीराकुंड और राउरकेला के इलाके में जो सिर्फ पचास

साठ मील का इलाका है, तीन हवाई अड्डे हैं। ये किस लिये हैं। सिर्फ इसलिये कि प्रधान मंत्री और दूसरे मंत्रियों की शान और शौकत में फर्क न आ जाए, उनकी शान और शौकत के लिए ये हवाई अड्डे बना दिये गये थे और अब उनसे कोई काम नहीं होता है, न माल ढोया जाता है और न कोई और जाता है। आप देखें कि यह शान शौकत की फिजूलखर्ची कितनी बढ़ गई है।

अब मैं दाजी जी से कहना चाहता हूं कि क्यों वह आरती उतारते हैं सार्वजनिक धंधों की, लेकिन उसके साथ साथ सब तर्क उसके खिलाफ देते हैं? इसका सबब यह है कि उन्होंने रूस के बारे में ज्यादा सोचा नहीं। रूस में बड़ा अत्याचार हुआ, बड़ा जुल्म हुआ। मैं उसको नापसन्द करता हूं, लेकिन मैं यह भी कहना चाहता हूं कि मैं हिन्दुस्तान की शौकीन पसन्दगी को भी बहुत नापसन्द करता हूं और अगर यह काम रूस में हुआ होता जो कि हिन्दुस्तान में पिछले 15 वर्षों से चल रहा है, तो न जाने कितने नौकरशाह और न जाने कितने मंत्री दीवार के सामने मुंह करके उड़ा दिये गये होते....

.....मैं सार्वजनिक धंधों पर बोल रहा हूं, और सार्वजनिक धंधे किस तरह से चलाए जाने चाहिएं इसका कमेटी को थोड़ा बहुत ज्ञान होना चाहिए।

.....मैंने केवल एक बात कह दी कि मंत्रियों और नौकरशाहों को रूस में गोली से उड़ा दिया गया होता। यह एक ऐसी चीज नहीं है कि जिस पर कि उनको आपत्ति हो सकती है। मैं उसको पसन्द नहीं करता। मैं उसको अत्याचार समझता। लेकिन मैं यह भी कहना चाहता हूं कि यह शौकीनी बहुत खराब हो रही है और अब समता का मन कायम किए बिना हिन्दुस्तान में सार्वजनिक धंधों को चलाने से बहुत ज्यादा नुकसान होगा। यह पहली बात है जो मैंने आपसे कही।

उसके साथ साथ जहां तक लोकतंत्र का हिसाब है, मजदूर और मालिक के रिश्तों के बारे में भी इतना ही कहूंगा कि निजी धंधों में मजदूर इतना असन्तुष्ट नहीं है जितना कि सार्वजनिक धंधों में है।

और लोकतंत्र के बारे में एक विचित्र घटना आपको बताता हूं। टाटा नगर कम्पनी नगर, करोड़पतियों का नगर है, लेकिन चित्तरंजन तो ऐसा विचित्र नगर हो गया है कि उसके अन्दर घुसने के लिए परमिट लेनी पड़ती है। इस तरह का लोकतंत्र चालू है। मेरे पास उदाहरण तो सैकड़ों हैं।

अध्यक्ष महोदय, जब कोई कमेटी बनेगी और उसके सामने ये बातें नहीं होंगी तो हम लोक सभा वाले करेंगे क्या?

मैं एक ही वाक्य में जो सार्वजनिक धंधों की कमियां हैं व्यापारिक दृष्टि से उनको

बताये देता हूं.....

नई कमेटी कायम की जाए, लेकिन वह क्यों कायम की जाए, इसके बारे में तो मैं अपने तर्क दूंगा अब मैं बहुत जल्दी खत्म कर रहा हूं। मंत्री महोदय को चाहिए कि वह खुद मुझ से वे उदाहरण ले लें जिनसे कि सार्वजनिक धंधे बिगड़े हुए हैं।

.....आज हिन्दुस्तान में जो फौलाद बिक रही है उसका दाम सस्ता होना चाहिए। क्योंकि लोहे और कोयले के मामले में हिन्दुस्तान स्वर्ग है। हम अपना कच्चा लोहा जापान को चार छः हजार मील दूर भेजते हैं और जापान अपना फौलाद यहां सस्ता बेचता है लेकिन हमारे फौलाद के दाम बहुत ज्यादा हैं। मैं समझता हूं कि निजी धंधे वाले इस बात को पसन्द करते हैं कि सरकारी धंधों के सबब से दाम ज्यादा रहें और वह भी मुनाफा उठा सकें।

ये सारी चीजें सार्वजनिक धंधों के मामले में हो रही हैं। अगर निजी धंधों में यह होता तो उनका दिवाला निकल गया होता लेकिन सार्वजनिक धंधों में दिवाले की बात नहीं रहती है। इसलिए मैं मंत्री महोदय को एक संकल्प दे रहा हूं कि वह अपने यहां लागत हिसाब जरूर जारी करें। लागत हिसाब में ये सब चीजें सामने आती रहेंगी कि कौन कहां कानून को भंग कर रहा है, कौन दोषी है। दोष के मामले में भी अच्छा हो कि सरकार ध्यान दे। जब कोई दोषी पकड़ा जाता है तो उसकी जगह दूसरा दोषी सामने आ जाता है। अब नए मंत्री आए हैं, उन्हें पता चल जाएगा। कभी वित्त मंत्री दोषी समझे जाते हैं, तो फिर पाटिल साहब दोषी समझे जाते हैं, फिर कामत साहब दोषी समझे जाते हैं और इस तरह से दोषी पकड़ा नहीं जाता। इसलिए दोषी पकड़ने के बजाए हिन्दुस्तान की सरकार का ध्यान जाना चाहिए इस तरफ कि दोष को कैसे दूर किया जाए।

अन्त में मैं एक ही वाक्य कहता हूं जितने मंत्री लगे हैं, ये सरकार में नहीं रहेंगे तो ये सारे के सारे निजी धंधों के उपासक और हिमायती बन जायेंगे। केवल मेरा जैसा आदमी सार्वजनिक धंधों का हिमायती रहेगा।

7

# तृतीय पंचवर्षीय योजना के मध्यावधि मूल्यांकन सम्बन्धी प्रतिवेदन*

इस योजना को देशहीन, दिशाहीन, मूर्ख विद्वानों ने बनाया है, और इस पर अमल करते हैं भ्रष्ट योगी।

विद्वान मूर्ख हैं इस का सबूत यह किताब है जो पौने दो सौ सफे की है और आसानी से चालिस, पचास सफहों में लिखी जा सकती थी, अगर इस में फुजूल और निरर्थक शब्द न होते, जो शायद इस कारण से हैं कि अंग्रेजी की नकल अभी आप लोग अच्छी तरह करना नहीं जानते....

इस में एक अध्याय आर्थिक पृष्ठभूमि का ऐसा है जो कि दस सफे का है और आसानी से डेढ़ सफे में लिखा जा सकता था। निरर्थक कारण, निरर्थक नुस्खे, निरर्थक लफ्फाजी और दिशाहीन इसलिये है कि जैसे लट्टू चक्कर खाता रहता है और कहीं रास्ता नहीं निकाल पाता या जैसे भूल भुलैया होती है, यह कोई रास्ता नहीं निकाल पा रही है....

देशहीन इसलिये कि रूस और अमरीका की पद्धतियों के चक्कर में यह लोग फंस जाते हैं और अपने देश की कम सोचते हैं तथा उन की ज्यादा सोचते हैं। इस के अलावा जो हमारे हिन्दुस्तान की पैदावार की नींव है उस के ऊपर यह लोग अमरीका और रूस की खपत की इमारत की रचना करना चाहते हैं। जहां तक भ्रष्ट योगी का सवाल है, अगर मंत्री जी महाराज सुनते आयें तो सरकारी पार्टी के सब से बड़े सदर साहब के घर में दो लाख रुपये की दरियां और कालीन बिछाये गये हैं, और वह भी हिन्दुस्तान का पैसा खर्च कर के। यह सब योजना में आता है क्योंकि वह दो लाख रुपये किसी कारखाने में लगाये गये होते। फिर खाली यही दो लाख नहीं, इस की नकल करते हुए न जाने कितने खर्च किये जाते हैं। दो अरब, दो खरब रुपयों का नुकसान इस तरह से होता है....

मैं खपत के बारे में कह रहा था कि खपत की इमारत तो है रूस और अमरीकी की और पैदावार की नींव है हिन्दुस्तान की। इस से बड़ा और कोई तर्क हो नहीं सकता है

* लोक सभा, वाद-विवाद, 9 दिसम्बर 1963

जहां तक इस योजना का सम्बन्ध है।

फिर इस योजना की रपट के बारे में ईमानदारी का जिक्र किया गया है। मैं कहना चाहता हूं कि अगर आप इस में सिंचाई के अंक देखें तो पहले और दूसरे वर्ष के तो जो अंक हैं वे दे दिये गये हैं और तीसरे वर्ष के केवल उद्दिष्ट दे दिये गये हैं। नतीजा यह होता है कि बड़ी और मध्यम सिंचाई के बारे में पहले और दूसरे वर्ष में मुश्किल से आती हैं 12 लाख एकड़ जमीन जिस पर सिंचाई होती और जो तीसरा वर्ष के लिये उद्देश्य बतलाया है वह 25 लाख एकड़ है। नतीजा यह होता है कि सैकड़ा निकल आता है 35 लेकिन मेरे हिसाब से अगर उन्हीं को लिया जाय जो कि हो चुकी हैं इस योजना की अवधि में तो सैकड़ा मुश्किल से 27 आयेगा। इसी तरह से छोटी सिंचाई के बारे में भी आंकड़े कम हो जायेंगे। तो मेरा यह कहना है कि यह रपट ईमानदारी से नहीं लिखी गई है।

एक प्रमाण मैं और दिये देता हूं। मशीनी औजारों के मामले में कहीं भी पदार्थों के अंक नहीं हैं, खाली रुपयों के हैं। जैसे चीनी मिलें हैं इतने रुपयों की, मशीनी औजार हैं इतने रुपयों के। लेकिन उन की क्या क्षमता है, इस का कहीं भी जिक्र नहीं है। लेकिन इन सब चीजों को और आगे चलाने के पहले मैं कुछ सर्वमान्य चीजें कहना चाहता हूं, जिस पर सरकारी लोगों को भी कोई ऐतराज नहीं होना चाहिये। उन में से एक है सफाई के बारे में। मेरा ऐसा ख्याल है कि इस योजना के करने वाले लोग, लिखने वाले लोग, सारा इंतजाम चलाने वाले और सारे सरकार के दफ्तर के लोग आदी हो गये हैं कि वे अपने दोष की सफाई दे दिया करें, दोष को दूर करने का तरीका कोई नहीं निकालता। नतीजा यह होता है कि उन की जितनी भी फाइलें आप देख लें, उन के हाशिये में लिखा रहता है कि मेरा दोष नहीं था, और किसी और का दोष था। हमेशा लिखा रहता है कि दोष उस का था, मेरा नहीं था। इस का नमूना भी इस सदन में हम देख चुके हैं। जिस दिन गुड़ वाला मामला उठा तो ब्रह्म प्रकाश जी ने कह दिया कि मेरा दोष नहीं था, रेलवे मंत्रालय का दोष था, उन्होंने लोगों से घूस ले लिया। रेलवे मंत्रालय वाले चाहते तो कह सकते थे कि इस में हमारा दोष नहीं है जो प्रधान मंत्री हैं वह इतनी ज्यादा विलासिता और फैशन का युग चला रहे हैं कि हम क्या करें। तो दोष टाल देने का तरीका चलता रहता है। मैं सब से पहली सिफारिश करूंगा कि दोष को टालो मत, उस को ढूंढो, उस को दूर करो, और उस को दूर करने में अगर दोषी को सज़ा देनी पड़े तो दो, लेकिन वह दूसरे दर्जे की बात है।

इसी तरह से मैं लक्ष्य के बारे में कहना चाहता हूं। इस में सब से अव्वल चीज है खर्च, दूसरी चीज़ है चीज़ें और तीसरी चीज़ है मनुष्य। खर्च के बारे में मुझे यह कहना है

कि जब आप रकम देते हैं कि इतना खर्च होगा, फलां मद में होगा तो साल के आखिर में, मार्च या अप्रैल में जब वह समय नजदीक आने लगता है तो हर एक महकमा सोचने लगता है कि जल्दी से इस पैसे को खर्च करो, और फजूलखर्ची अपने आप हो जाती है। तो खर्चे का लक्ष्य न रख के चीजों का लक्ष्य ज्यादा रखना चाहिए, और सब से ज्यादा लक्ष्य रखना चाहिए मनुष्य का जिस को कि यह सरकार बिल्कुल भुला बैठी है। हिन्दुस्तान में मनुष्य की पसलियां पिघल चुकी हैं, यहाँ का मनुष्य मेहनत नहीं कर सकता, फावड़ा नहीं चला सकता, मिट्टी नहीं काट सकता, बन्दूक की बात तो छोड़ दीजिये। मुझे पता चला है कि बीस आदमियों में से खाली एक आदमी बन्दूक को यों तान सकता है, बाकी लोग ऐसा नहीं कर सकते। खैर मुझे बन्दूक से तो कोई ज्यादा मतलब नहीं है। वही बात फावड़े पर भी लागू होती है। तो हिन्दुस्तान का मनुष्य कमजोर होता जा रहा है। तो आप ऐसी योजना बनाइये कि जो उस मनुष्य को मेहनत के लायक बनाये।

अब मैं दिशा की बात कहना चाहता हूं। दिशा अगर इस योजना में लागू की गयी तो क्या करना होगा? मिसाल के लिए खेती है। बहुत लम्बा चौड़ा किस्सा है खेती का। यह ठीक है कि कोशिश करनी चाहिए खेती को सुधारने की। लेकिन उस सुधार में भी एक योजना में किसी एक चीज को पकड़ लेना चाहिए कि उस को तो हम हर हालत में हासिल कर ही लेंगे। जैसे खेती के मामले में लिखा है कि हम मिट्टी का संरक्षण करेंगे नदी से जो मिट्टी कटती है उस का, और जो जलमग्न जमीन है उसको खेती योग्य बनायेंगे। तो जहां तक सर्वांगीण सुधार करने की बात है, वह जरूर करो, लेकिन साथ में एक खास दिशा ले लो कि हिन्दुस्तान में जितनी भी जलमग्न जमीन है उसको हम ठीक करके खेती योग्य बनायेंगे चाहे वह तीन करोड़ एकड़ हो या चार करोड़ एकड़ हो। उसके लिए यह निश्चय कर लो कि उस को हम ठीक करके छोड़ेंगे।

इसी तरह से शिक्षा के बारे में मैं दूसरी मिसाल देता हूं। शिक्षा को लेकर सर्वांगीण परिवर्तन इस में है। ठीक है उन को रखें। लेकिन एक योजना में एक चीज ले लो कि हम हिंदुस्तान को इस योजना के अंदर पूरी तरह साक्षर बनायेंगे और ऐसा करके छोड़ेंगे कि इस योजना में हर आदमी साक्षर हो जाये। तो इस तरह से साक्षरता की दिशा ले लो।

इसी तरह से एक और दिशा ले सकते हो स्वास्थ्य के बारे में। स्वास्थ्य के बारे में सर्वांगीण सुधार करो। लेकिन एक चीज ले लो कि हम इस योजना में हिंदुस्तान के गांवों में और शहरों में भी पीने के साफ पानी की नल द्वारा व्यवस्था कर देंगे।

तो मैं ने कहा कि सर्वांगीण चीजों के अंतर्गत किसी एक चीज को पकड़ कर उसे

हासिल करने की कोशिश करो।

अब इस योजना में खर्च ज्यादा है और आमदनी है कम। करीब-करीब हर मुहकमे में मैं यह बात कह पाता हूं। इस समय मैं केवल उद्योग और खान को लेता हूं। इस में निर्माण के लिए सन् 1960-61 में थोड़ा सा अंदाजा दिया गया था कि इस में निर्माण पर 4 अरब और 50 करोड़ रुपया खर्च होगा। लेकिन वह बढ़ कर 6 अरब 90 करोड़ हो गया। कोई पौने दो गुना बढ़ जाता है। इसी तरह से पूरी योजना में 18 अरब से 23 अरब हो जायेगा। तो खाली उद्योग और खान में 5 अरब का खर्चा निर्माण में बढ़ गया। क्यों बढ़ गया? मैं बतलाता हूं कि कैसे बढ़ गया। बरौनी में तेल शोधन कारखाना बनाया गया, उसके लिए जो जमीन ली गयी वह इतनी नीची थी कि उस में बरसात का पानी भर जाता था और इसके लिए कोशिश की गयी कि करोड़ों रुपये खर्च कर के उस को पाट दिया जाये।

इसी तरह से आप ट्राम्बे को लें। वहां उर्वरक का कारखाना बनाया गया इसलिए कि वहां तेल शोधक कारखाने की गैस आसानी से मिल जायेगी, लेकिन वहां जमीन का दाम ज्यादा देना पड़ा। गैस तो सस्ती जमीन में भी पाइप द्वारा मिल सकती थी, लेकिन इस पर विचार नहीं किया क्योंकि सरकार का पैसा है इसलिए उसको बेरहमी से खर्च किया जाता है। उसको चाहे जितना खर्च करते चले जाओ।

इसी तरह से मैं आमदनी के बारे में कहना चाहता हूं। इस योजना में सरकारी धंधों से साढ़े चार अरब का मुनाफा दिखाया गया है। मैं ने यह अंदाजा लगाने की कोशिश की कि सरकारी उद्योगों में कुल कितना पैसा लगा है। जब से यह सरकार आयी है उससे पहले भी कुछ सरकारी उद्योग थे। तो मैं कुछ अंदाजा लगाना चाहता था कि इन पर कुल कितना रुपया लगा है ताकि यह मालूम किया जा सके कि कितने रुपये पर इतना मुनाफा आता है। लेकिन मैं इसका पता नहीं लगा पाया। पता नहीं यह चीज इस में है भी या नहीं और होगी भी तो इस ढंग से जैसे जंगल में सुई, जिसको ढूंढा न जा सके। लेकिन इस मुनाफे को साढ़े चार अरब बताया गया है। मैं समझता हूं कि इस को आसानी से दस अरब तक पहुंचाया जा सकता है। जो खर्चा बताया जाता है उस में चार पांच अरब की बचत हो सकती है: और जहां मुनाफा बताया गया है वहां चार पांच अरब की बढ़ती हो सकती है। इस प्रकार केवल उद्योग धंधों और खान में इस योजना में दस अरब की मुनाफे से और बचत से बढ़ती हो सकती है।

और जहां तक पूरी योजना का सवाल है जो कि एक खरब रुपये वाली है, मैं ठीक अंदाजा तो नहीं लगा सकता, लेकिन मेरा अनुमान है कि 30 या 40 अरब रुपया इस

योजना में फिजूली और फिजूल खर्ची में चला जाता है। आप समझें कि एक तो फिजूली है और एक फिजूल खर्ची है। फिजूली तो वह जैसे मैंने बरौनी के तेल शोधक कारखाने के बारे में बतलाया और फिजूल खर्ची यह कि अय्याशी, ठाठ बाट, शान शौकत और यूरोप की नकल।

और इसी तरह आप पूरा खर्चा लें जो कि कुल खर्चा सरकार का है एक खरब इस योजना का होगा। ढाई खरब का खर्च है पांच साल में। मेरा ख्याल है कि इस ढाई खरब में से एक खरब रुपया फिजूली और फिजूल खर्ची में चला जाता है। इसलिए मैं चाहता हूं कि हम बड़ी दृष्टि रखें। छोटे-छोटे मामलों में न फंस जायें। अगर हम कोई छोटी मोटी चीज निकाल लेंगे तो उससे कोई फायदा नहीं होगा। हम को बड़ी दृष्टि लेनी चाहिए।

औरों से तो मैं क्या कहूं, मैं उन के सरदार से कहना चाहता हूं जो कि यहां बैठते नहीं हैं। मैं चाहता हूं कि उन तक मेरी यह बात पहुंचा दी जाये। वह औसत उम्र की डींग अक्सर मारते हैं कि हिन्दुस्तान की औसत आयु 40 या 42 साल हो गयी है। मैं कह देना चाहता हूं कि इस तरह के आंकड़े बिल्कुल गलत हुआ करते हैं क्योंकि हिन्दुस्तान में बच्चों की मौत में कुछ फर्क आया है इसलिए औसत उम्र में बढ़ाव हो गया है, यह नहीं है कि मालवीय जी की तरह लोगों की उम्र ज्यादा होने लगी हो।

इसी तरह से यहां जिक्र कर दिया जाता है बाईसाकिलों का या रेडियों का। हम को अपने सामने योजना के मामले में तीन कसौटियां रखनी चाहिए। एक कसौटी तो यह हो कि हमने कितनी तरक्की की है भूत के मुकाबले में, दूसरी कि हमने अपने पड़ोसियों और दुनिया के दूसरे देशों के मुकाबले में कितनी तरक्की या तनज्जुली की है और तीसरी यह कि हमारी आशायें क्या हैं।

तो मैं कह देना चाहता हूं कि कोई भी पढ़ा लिखा आदमी — पढ़ा लिखा मैं विश्व विद्यालय के हिसाब से नहीं कहता उन लोगों की तुलना में कहता हूं जो कि बाइसिकिल या रेडियों का जिक्र कर दिया करते हैं — यह मान लेगा कि भूत की तुलना में हम थोड़ा सा आगे चाहे रेंगे होंगे, लेकिन पड़ोसियों और दुनिया के दूसरे मुल्कों की तुलना में हमारी तरक्की बहुत कम हुई है। और उस के साथ साथ जो हमारी आशायें थीं उन को देखते हुए तो हम इन 15 बरसों में पीछे हो गये हैं आगे बढ़ने का तो कोई सवाल ही नहीं है। चीन जो था 15 बरस पहले उसकी तुलना में वह आज बहुत आगे बढ़ा है। और चीन को तो छोड़ दो। एक मामूली सा देश घाना बहुत आगे बढ़ा है। हम जरा सा रेंग कर आगे बढ़े जरूर हैं लेकिन और देशों के मुकाबले में हम पीछे हट गये हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि हमें बड़ी दृष्टि रखनी होगी ।

और इसी बड़ी दृष्टि को मैं सदन के सामने रखना चाहता था जबकि मैंने कहा था कि 27 करोड़ आदमी इस देश में ऐसे हैं जो रोजाना तीन आना रोज पर जिन्दगी काटते हैं। यह अंक ऐसा है जिस पर किसी को बहस करने की गुंजाइश नहीं रह गयी है। उस समय नन्दा जी इस पर बहुत ताव से बोले थे, आज भी हम लोग उन का ताव से बोलना सुन चुके हैं। लेकिन उन्होंने एक बड़ी गलती की थी कि वह गैर खेतिहर धन्धों की आमदनी की गिनती दो बार कर गये। उन्होंने 1500 करोड़ का फर्क बताया था। जो इस तरह की गलती उन्होंने उस वक्त की थी, लेकिन इस समय मैं उस में नहीं जाना चाहता। मैं ने जो कहा कि इस देश में 27 करोड़ आदमी रोजाना तीन आने पर जिन्दगी बसर करते हैं, उस में मेरा उद्देश्य सरकार का नंगा चित्र आप के और हिन्दुस्तान के सामने रखने का था। लेकिन मेरा खाली यही इरादा नहीं था। मैं चाहता था कि जहां मैं रोग को दिखाऊं वहीं रोग का इलाज भी दिखा दूं। रोग के दरस में इलाज का परस शामिल था। रोग क्या है? रोग यह है कि 27 करोड़ आदमी तीन आने रोज पर जिन्दगी काटते हैं, साढ़े 16 करोड़ आदमी एक रुपया रोज पर जिन्दगी काटते हैं। मैं यह औसत बता रहा हूं, और 50 लाख आदमी 33 रुपये रोज खर्च करते हैं। तो अब यह रोग है तो बिल्कुल साफ है कि इस का इलाज क्या हो सकता है। जो लोग 33 रुपया रोजाना खर्च करते हैं उन को — मैं यह नहीं कहता कि उन को तीन आने रोज पर ले आया जाये — 15 या 16 रुपये रोज पर ले आया जावे, तो आसानी से आमदनी में 25 अरब रुपया और सरकार के करों के आंकड़ों के हिसाब से 15 अरब रुपया बच जायेगा, जो एक पंचवर्षीय योजना में 75 अरब से ले कर एक खरब तक पहुंच जायेगा और उस से योजना ठीक ठाक चल सकेगी।

यह रोग और इलाज मैंने पहले भी सदन के सामने रखा था और आज फिर रखा है। जब तक यह इलाज नहीं किया जायेगा समस्या हल नहीं हो सकती। हम ने जो हिन्दुस्तान में अमरीका, रूस और यूरोप के ढंग पर ढांचा बिठा रखा है, उस को जब तक हम नहीं बदलेंगे, तब तक योजना किसी तरह पूरी हो ही नहीं सकती। खाली यह कह देना कि यह सरकारी योजना है और सरकारी धन्धों और करोड़ पतियों के धन्धों का जो झगड़ा उस को बता देना काफी नहीं है, क्योंकि ये दोनों धन्धे एक ही ढंग पर चलते हैं। उनका एक ही उद्देश्य है, एक ही उन का ढंग है, एक से ही मैनेजर और तनख्वाहें हैं और एक सा ही रहन सहन का ढंग है। इसलिए उन की तुलना करने से कोई मतलब नहीं निकल पाता। हमें इस में फर्क करना चाहिए और वह तभी हो सकेगा जब हम इस बुनियादी बात को पकड़ेंगे कि जो पचास लाख आदमी 33 रुपया रोज खर्च करते हैं उन को 15 या 16 रुपये पर लाया जाये। इस बारे में मैं और कुछ नहीं कहना चाहता क्योंकि इस से

वे तिलमिला जावेंगे। मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि इन में भी बहुत ज्यादा सीढ़ियां हैं। इतनी सीढ़ियां हैं, एक दो सीढ़ी नहीं। दो तीन सीढ़ी होती तो अब तक मामला ठीक हो गया होता। गरीबी में भी लाखों सीढ़ियां हैं और अमीरी में भी लाखों सीढ़ियां हैं, अगर लाखों नहीं तो हजारों सीढ़ियां तो जरूर हैं। इन सीढ़ियों के सबब से कोई भी समाज की पुनर्रचना मुश्किल हो गई है। जो बुनियादी खराबी है हमारी आर्थिक व्यवस्था की है वह इस योजना में भी आ जाती है। और वह यह कि हमारी उपज, पैदावार तो है मध्य कालीन, हमारे किसान वही हल चलाते हैं जो कि 1500 वर्ष पहले चलाते थे। एक, आध जगह कहीं ट्रैक्टर्स आ गये हों तो-मैं कहता नहीं लेकिन आम तौर पर हमारे वहीं पुराने साधन अभी तक चले आ रहे हैं। वही पुराने करघे चल रहे हैं जो कि दो हजार वर्ष पहले या हजार वर्ष पहले चलते थे। यह सही है कि कुछ मिलें भी आई गई हैं। लेकिन बुनियादी तौर पर हमारी उपज और पैदावार की नींव तो मध्यकालीन है और उसके ऊपर खपत की जो इमारत हमने खड़ी की है वह है आधुनिक, आधुनिक भी नहीं आधुनिकतम। अब बिल्कुल अमरीका और रूस की नकल करने वाली कब तक यह भारी इमारत जो कि अमरीका व रूस की खपत वाली है वह हमारी इस नींव पर रह सकेगी? यह पंचवर्षीय योजना जो अभी आपके सामने आई है यह साबित करती है कि यह मामला ज्यादा नहीं चल सकता है....

जनता सरकार के अभिमुख है उसी तरीके से सरकारी अफसर अभिमुख है। मेरा यह कहना है कि हिन्दुस्तान के 5000 बड़े अफसरों के लिए ही एक लाख सरकारी नौकर रखे गये हैं। सरकारी नौकरों की कुल तादाद एक करोड़ है। अगर इस तरीके से देखा जाये तो बड़े लोगों की सिर्फ सेवा सुश्रुषा, ठाठ बाट और शानशौकत के लिए सरकार का एक बड़ा भारी अमला चलता रहता है। आखिर को उसका बोझा इस सरकार की खर्चे की योजना पर पड़ता है। फिर इस योजना के बनाने वालों के दिमाग में एक धारणा यह रही है कि अगर हम आर्थिक ढंग से देश को बदल देंगे तो बाकी सब चीजें अपने आप बदल जावेंगी, यह चीज बड़ी गलत है। इसका नतीजा यह हुआ है कि कोई भी समस्या पिछले 15 वर्ष में हल नहीं हो पाई।

एक और विचित्र तरह की कैंची हर समस्या पर चल गयी। उस को मैं कांग्रेस कैंची कहता हूं जिसकी कि मिसाल यह है कि राजा, महाराजाओं को जो पैसा दिया जाता है उसके बारे में एक तरफ तो कहा जाता है कि यह पैसा, प्रिवी पर्स बहुत खराब चीज है लेकिन दूसरी तरफ उन्हीं के द्वारा यह कह दिया जाता है कि हम क्या करें? हमें तो जो वचन उनको दिया गया है उसे निभाना पड़ रहा है और इसीलिए यह प्रिवी पर्स उनको देनी पड़ रही है। कैंची का एक फल है जो कि कहता है कि यह पैसा देना बहुत बुरा है

और दूसरे फल से कह दिया कि हम वचनबद्ध हैं और इस कारण देना ही पड़ता है। क्या मैं उनसे पूछ सकता हूं कि जिन्होंने यह वचन दे रखा है वह गद्दी से हट क्यों नहीं जाते? अपनी जगह दूसरे लोगों को आने दो जो कि यह पैसा देना बन्द कर दें। आखिर यह कोई तर्क है बात करने का? यह कैंची हर चीज पर चलती है, भाषा पर चलती है सम्पत्ति पर चलती है।

इसी तरीके से अखिल भारतीय सेवाओं के बारे में सरकारी नौकरियों के बारे में आपको जानना चाहिए कि इस देश में 5 रुपया महीने पर काम करने वाले गांवों के चौकीदार हैं। अब मैं सब से ऊंची तनख्वाहों का जिक्र नहीं करूंगा, फिर से लोग चिल्ला उठेंगे।

उसके बाद मैथौन डैम को देखिये जो कि एक सरकारी धंधा है। उसमें सरकारी नौकरों की तादाद बढ़ती चली गई क्योंकि एक तरफ तो बंगाली, बिहारी में होड़ चलती गई और दूसरी तरफ ब्राह्मण और कायस्थ में होड़ चली कि कौन अपने आदमियों को ज्यादा भरती करता है। वह चीज ऐसे है कि जब तक एक मंत्री जिनको कि कामराज योजना की लात जब तक नहीं लगी, श्री मोरारजी देसाई, उन्होंने मुझे कहा था कि तुम तो बहुत ज्यादा बातें करते हो, जो योग्य है वह तो आखिर जगह पायेगा ही। मैं आपसे यह नम्र निवेदन करना चाहता हूं कि अगर वह खुद प्रधान मंत्री हुए होते तो अब तक हिन्दुस्तान में सब से योग्य अनामिल ब्राह्मण ही समझे गये होते और दूसरे न समझे गये होते। यह देश ही इतना सड़ चुका है कि यहां पर जो आदमी बैठता है वह अपनी बिरादरी वालों को योग्य बना ही देता है।

इसी तरह योजना के बारे में एक बहुत गलत बात बतलाता हूं, दिखावा। दिखावा कैसे किया जाता है इसके बारे में मैं आपको बतलाऊं कि इलाहाबाद रेलवे स्टेशन जो कि अभी 50 वर्ष अच्छे तरीके से चल सकता था, एक करोड़ रुपये के खर्च से तोड़ कर नया बनाया गया, क्योंकि उसको अच्छा दिखाना है। इसके बरअक्स जो इलाका गरीब और अविकसित है, जहां गंगा और रामगंगा का पुल बन सकता है, जहां से पलटनी सामान उत्तर पिथौरागढ़ को जाता है चीन से सामना करने के लिए, वहां पर अगर पुल बना दिये जायें, 4, 5 करोड़ रुपये के खर्च से तो आज जो दस घंटे का सफर है वह तीन घंटे में तय हो जायेगा।

इसी तरीके से अगर इस योजना के बारे में कुछ जानना हो तो दिल्ली योजना के बारे में सोच लीजिये। दिल्ली के ऊपर तो 7 लाख रुपया खर्च करके योजना बनाई गई है और बाकी का क्या हाल है इसी तरीके से इस योजना का एक और नमूना लेना हो तो

खाली अहमदाबाद जाकर देख लें....अहमदाबाद के बंगलों को देखने से पता चलता है कि कोई 10-15 हजार बंगले साहबों वाले अहमदाबाद में बने हैं। यह कोई जनता की योजना नहीं है, बल्कि योजना तो यह है कि किस तरीके से 50 लाख बड़े लोगों की तादाद धीरे-धीरे बढ़ाई जाये। हर साल हिन्दुस्तान में दो, तीन लाख साहबों का निर्माण होता है। अब यह तो समाजवाद के रास्ते में रुकावट है क्योंकि जब कभी हिन्दुस्तान समाजवादी क्रान्ति के लिये तैयार होगा तो इस योजना के द्वारा जो भी बंगलिये वाले नये नये साहब लोग तैयार हुए हैं वह इसके खिलाफ जायेंगे।

मैंने सुना तिवारी महाराज ने एक बात कही। बढ़िया बात थी, बिहार के खिलाफ़, पक्षपात हुआ लेकिन वह उसको ऐसी सीमित जगह पर ले गये कि वह सही चीज ग़लत हो गयी। असल में क्या हो रहा है? पक्षपात हो रहा है, किस के खिलाफ़, जो गरीब हैं, उनके खिलाफ़। मिसाल के लिए मैं आपको बतलाऊं कि उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार आदि के इलाके, यह हिन्दुस्तान में फ्री आदमी औसत आमदनी 200 रुपये साल वाले हैं और बाकी जो इलाका है, जिनमें अंग्रेजों ने अपने विदेशी व्यापार की जूठन छोड़ी थी, जैसे बम्बई और कलकत्ता आदि, वहां पर फ्री आदमी औसत आमदनी जाकर 400 रुपये पड़ती है।

फिर जहां का एक बड़ा आदमी होता है वह अपने इलाके को खूबसूरत बना लेता है। अगर कोई मंत्री होता है तो वह अपने इलाके को ठीक ठाक कर लेता है बाक़ी इलाके का सत्यानाश कर देता है।

....2 लाख 40 हजार एकड़ ज़मीन पर सहकारी खेती हुई है। चुनावों के दिनों में इतना ज्यादा ढोल पीटा गया सहकारी खेती का लेकिन असलियत यह रही है कि 30 करोड़ एकड़ की खेती में से मुश्किल से 2 लाख 40 हजार एकड पर खेती हुई है । इसलिए मैं यह कहना चाहता हूं कि चुनाव के समय में ढोंगी वायदे और सरकार की असलियत दोनों बिलकुल अलग अलग है।

भ्रष्टाचार का तो कहना ही क्या? खादी और ग्रामोद्योग में 52 करोड़ रुपये योजना में खर्च किये गये हैं। नतीजा यह होता है कि गज 6 करोड़ 40 लाख से बढ़ कर 7 करोड़ 70 लाख तक पहुंच जाता है जब कि पूरी पैदावार अरबों गज पर जाती है। किस लिये है? मैं यह साफ कहना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान के प्रधान मंत्री ने इस योजना को बनाया है। इस के कई तात्पर्य रहे होंगे। एक यह भी है कि किस तरीके से सच का मुंह सोने के बर्तन से ढक दिया जाये। हिन्दुस्तान में न जाने कितने समुदायों को, सेवकों को, साधुओं को, प्रचारकों को या विद्या वाले लोगों को केवल नौकरी के धंधे में, जब मंत्री बना नहीं

सकते या मंत्री बनना नहीं चाहते तो उनको इस तरह से फंसा रक्खा गया है। इस तरीके से सारी योजना भ्रष्ट हो गयी है। अब इसको बदलने का केवल एक ही उपाय रह जाता है कि कोई संगठन ऐसा बने। मैं सरकार से इसकी उम्मीद नहीं करता। इस सरकार के पास तो संगठन है नहीं, तैयार भी नहीं कर सकती, खेती और कारखानों को सुधारने वाला, लेकिन हमें अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि हम भी वह संगठन तैयार नहीं कर पाते हैं जो इस प्रकार के कूड़े को उठा कर फेंक दे। आज देश इसी पेंच में पड़ गया है कि सरकार कोई संगठन नहीं बना पा रही है जो खेती और कारखानों को सुधारे, जनता वह संगठन बना नहीं पा रही है जो इस सरकार को उखाड़ कर फेंक दे। उसका एक मात्र कारण है यह कि हर एक कि दृष्टि संकुचित हो गयी है, अपने समूह की हो गयी है अपने क्षेत्र की हो गयी है। आपसे मैं सही कहता हूं कि मेरा मन तड़पता है जब से यहां दिल्ली में आया हूं, मैं सोचता हूं कि किस जहन्नुम में मैं आकर फंस गया हूं? रोज मेरे पास लोग दुखड़ा लेकर आते हैं, रेडियो वाले आते हैं, तार वाले जाते हैं, खेत मजदूर आते हैं, वह सब अपनी अलग-अलग टूटी हुई वृत्ति लेकर आते हैं लेकिन एक जन कर सारे देश की राष्ट्रीय तबियत पैदा हो, ऐसा हो नहीं पा रहा है। उस का सब से बड़ा कारण यह है कि इस योजना से सरकार ने देश के विश्वास का खात्मा कर दिया है। लोग कहते हैं कि आज जो कूड़ा गद्दी पर बैठा हुआ है, इस बात की क्या गारंटी है कि कल तुम भी उसी जगह जब बैठोगे तुम भी कूड़ा न हो जाओगे? मैं यह समझा नहीं पाया कि जिस तरीके से आज इस वर्तमान सरकार के कूड़े को हटा सकते हैं उसी तरह से कल उनकी जगह बैठने वाले भी यदि कूड़ा हो जायें तो जनता उनको भी हटा सकती है, जिस तरह से घर में रोजाना झाड़ू देकर कूड़ा घर के बाहर किया जाता है। लेकिन वैसा संगठन बन नहीं पा रहा है। इस योजना पर टीका करते हुए अपनी नालायकी कह देना चाहता हूं कि वह संगठन हम बना नहीं पा रहे हैं। फैलाव वाली वह मनोवृत्ति, आर्थिक जीवन में वह फैलाव वाली मनोवृत्ति कि तीसरे दर्जे में जो मुसाफिर घुसते हैं और जो उसमें पहले से बैठे हुए हैं, उनमें कुछ लोग ताकतवर हैं वह अपना फैल कर बैठ जाते हैं जबकि कमजोर लोग सिकुड़ कर बैठ जाते हैं। मैं आपसे यह निवेदन करूंगा कि किस तरीके से मुल्क में, जीवन में यह फैलाव वाली मनोवृत्ति फैले तभी कहीं जाकर यह योजना वगैरह हो पायेगी।

८

# निवारक नजरबन्दी (जारी रखना) विधेयक*

आजादी के पन्द्रह वर्षों में मुझे कांग्रेसी नेताओं और मंत्रियों को नजदीक से देखने का मौका नहीं मिला। इधर तीन-चार महीनों से थोड़ा सा उन्हें देख रहा हूं। खास तौर से दो गृह मंत्रियों को मैंने देखा और मेरा मन कुछ घबरा रहा है। डंडा जिस के हाथ में है और जो डंडा चलाता है उसे मन का और वाणी का नम्र होना चाहिये। मैं नहीं जानता कि श्री लाल बहादुर शास्त्री मन के नम्र थे या नहीं लेकिन वाणी के नम्र थे। श्री नन्दा मन और वाणी दोनों के बड़े तेज है। हम को, जिन पर डंडा चलाया जाता है, अधिकार है कि हम गुस्सा करें, हमारे लिये यह स्वाभाविक है, चिल्लाएं, लेकिन जिनके हाथ में डंडा है उनका कर्तव्य है कि वे नम्र रहें। उनके हाथ में राज दंड है। मैं नहीं कह सकता कि दोनों में कौन अच्छा है कौन बुरा है। शायद नन्दा जी ज्यादा अच्छे है, क्योंकि मन और वाणी जब दोनों ही क्रूर है, तो बगावत जल्दी हो जाया करती है। लेकिन मैं इस बहस में न पड़ कर भी इतना ही कहना चाहूंगा कि गृह मंत्री को बहुत सावधान रहना चाहिये, कोशिश करनी चाहिए हमेशा कि अपने मन में और वाणी दोनों से नम्र रहें। और इसीलिये मैं इतना कहूंगा कि यह नजरबन्दी का कानून बहुत जरूरी है कि सरकार अपनी पुलिस को, अपनी दंड शक्ति को, अपने गृह मंत्री को, कुछ थोड़ा सा काबू में रखे। यह नजरबन्दी कानून मुझे घबरा देता है, खास तौर से उन हालात को देख कर जो मैंने यहां पिछले तीन महीनों में देखे है। वैसे मैं अहिंसा वाला आदमी हूं। मैं आप को बता दूं कि सन् 1942 में अंग्रेजों की गाड़ियां उलटते वक्त मैं एक दुविधा में फंस जाता था कि गाड़ियां उलटी जाएं तो कौन सी उलटी जाएं, मालगाड़ियां या सिपाहियों वाली गाड़ियां। मैं सिपाहियों वाली गाड़ियों को उलटने के खिलाफ रहता था, लेकिन मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि मेरे अहिंसात्मक दिमाग पर इधर कुछ परछाइयां, चाहे दो चार क्षण के लिए हों, पड़ने लगी है।

यह नजरबन्दी कानून जो बार-बार सरकार यहाँ लाती है वह वास्तव में ताजीरात हिन्द की एक दफा बन गया है, चाहे वह एलानियां यह कहें या न कहें। इस का सम्बन्ध संविधान की धारा 22 और 21 से है। लेकिन गृह मंत्री ने अपने भाषण में कुछ ऐसी बातें कहीं कि अगर मुझे ताकत होती तो मैं उन को संविधान भंग करने के अपराध में जेल देता और उन के ऊपर मुकद्दमा चलाता। मैं तो नजरबन्दी का कानून ही नहीं रखता, इसलिये यह सवाल नहीं उठता, लेकिन मैं उन पर मुकद्दमा चलाता क्योंकि उन्होंने कहा कि संविधान के नागरिक अधिकारों की कुल धाराओं को देखो तो मालूम होगा कि एक धारा दूसरी धारा को काटती है। अगर संविधान का इस तरह से मतलब निकाला जायेगा तब तो संविधान बिल्कुल खत्म हो जायेगा। नागरिक अधिकारों की धाराएं एक दूसरे को

*लोक सभा, वाद-विवाद 18 दिसम्बर, 1963

काटा नहीं करतीं वे तो एक दूसरे की पूरक बना करती हैं। 21 और 22 वीं धाराएं किसी और धारा से सम्बन्धित नहीं हैं किसी और धारा की कोई ताकत नहीं है कि 21 और 22वीं धाराओं में दिये गये अधिकारों को थोड़ा सा भी कम कर सके 22वीं धारा खुद उसको थोड़ा बहुत कम करती है.. ..

.....वह 19वीं धारा के बारे में कह रहे थे। उसका सम्बन्ध तो सुरक्षा से, दूसरे देशों के सम्बन्धों आदि से है। उनका कोई सम्बन्ध नजरबन्दी से नहीं है। नजरबन्दी का कानून तो अपनी जगह अलग है। हम को पूरा अधिकार है स्वतंत्र रहने का, 24 घंटे के अन्दर मजिस्ट्रेट के सामने जाने का । तो सिर्फ इसी धारा में जो शर्त लगी हुई है उसे हम को लेना चाहिए।

फिर उन्होंने कहा कि जनतंत्र का शिशु पेड़ है। इस को घेर कर रखना है। लेकिन जो घेरा वह लगा रहे हैं वह उन को बचाता नहीं वह तो अमर बेल है जो उस पेड़ को खा जायेगी। अगर उस पेड़ को वह बनाना चाहते हैं तो उसमें खाद दें उसको सूरज की रोशनी दिखलावें। उसको स्वतंत्रता की पूरी-पूरी ताकतें दें तब यह पेड़ पनपेगा। और आज जो नजरबन्दी कानून लाया जा रहा है उसके हिसाब से तो यह पेड़ मुरझा गया है और जो बचा है वह भी पता नहीं कितने दिन चलेगा।

.....यहां तक तर्क दिया गया कि इतिहास को देखो, इंगलैंड और यूरोप के इतिहास को देखो, तीन सौ बरस में उन्होंने नागरिक अधिकार हासिल किये थे। अगर आप इतिहास की चर्चा करोगे तो आपको इस बात में भी जाना होगा कि इंगलैंड ने कितने राजा, रानियों, मंत्रियों और प्रधान मंत्रियों को फांसी पर लटका कर अपने अधिकार हासिल किये थे। अगर आप उस इतिहास की पुनरावृत्ति करना चाहेंगे तो उनके बहुत बुरे नतीजे निकलेंगे। हमें तो अपना इतिहास अलग से बनाना है। हमने यह राज्य सत्याग्रह, सिविल नाफरमानी, के जरिये बनाया है। सिविल नाफरमानी से बने हुए राज्य के अलग नियम होते हैं, अलग कानून होते हैं, वे कानून वैसे नहीं हो सकते जैसे कि अमरीका में और इंगलैंड में हैं। इस तरफ भी श्री नन्दा को गौर करना चाहिए।

नागरिक अधिकारों और कानून का लगातार कटान हिन्दुस्तान में होता जा रहा है। जिस तरह से बाढ़ का पानी, नदियों का पानी मिट्टी को काटता चला जाता है, उसी तरह से ये सब कानून हिन्दुस्तान के लोगों के नागरिक अधिकारों को लगातार काटते चले जाते हैं। एक तो यह नजरबन्दी का कानून है, दूसरा भारतीय सुरक्षा कानून है, उसमें कोई ताकत ही नहीं रह जाती नागरिकों की। फिर उसी के साथ-साथ जब यह लगातार सिलसिला चलता है, फिसलन और कटान का, तो प्रायः हर मामले में लोग, और खास तौर से आप के जो अफसर हैं वे आलसी बन जाते हैं। प्रशासनिक और मानसिक आलस उन में आ जाता

है। किसी मामले को वह तैयार नहीं करते, किसी का अध्ययन नहीं करते क्योंकि उनको किसी बात का डर नहीं रहता है। उनको इस बात का डर नहीं रहता है कि हम अदालत में फंस जायेंगे या मुकदमा हार जायेंगे। जब यह डर होता है तो आदमी सचेतनता से काम काज करता है। लेकिन जब यह डर हट जाता है तो वह यह सोचता है कि हम किसी आदमी को गिरफ्तार कर लें, किसी को नजरबन्द कर दें, हम को कोई मुकदमा तो साबित करना नहीं है। तो ऐसे कानूनों से अफसर मानसिक और प्रशासनिक ढंग से आलसी बन जाया करते हैं, और कई बार तो ऐसा हुआ है, अक्सर हुआ है कि शासन चलाने वाले लोग बदले की भावना से इस कानून का इस्तेमाल करते हैं। मुझ पर यह चीज हो चुकी है। मुकदमे में जब कलक्टर हार गया तो झट से उसने मुझे नज़रबन्दी कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया, हालांकि वह नजरबन्दी थोड़े ही समय रही, क्योंकि उसके बाद सज़ा भी हुई और भी वाक्यात हुए।

जहां तक कानून का कटान हो रहा है कि मैं गृह मंत्री को बताना चाहता हूं कि आजकल अपने देश में खून और कत्ल न केवल राजकीय मामलों को हल करने के लिए इस्तेमाल हो रहे हैं, बल्कि निजी मामलों में भी यह अधिकार बन गये हैं। खून बहुत हो रहे हैं निजी मामलों के लिए.....

..... अभी इतना ही जान लीजिये कि बड़े लोग अपने निजी सम्बन्धों को चलाने के लिए खून तक का इस्तेमाल करने लग गये हैं।

और एक जगह तो दो विद्यार्थियों को, जिन्होंने अपनी जाति से अलग कुछ थोड़ा बहुत प्रेम किया था, जोकि बहुत अच्छी बात थी, खत्म कर दिया गया, क्योंकि उन लड़कियों के बाप जो उनके मास्टर भी थे, उनको यह पसन्द नहीं था। तो जब कानून की इस तरह कटान हो तो यह बात नागरिकों के मन में खास तौर से जो बड़े लोग हैं उनके मन में जम जाती है कि हम जो चाहें सो कर सकते हैं...

कानून का लगातार कटान हो रहा है। और अराजकता केवल जनता की नहीं हुआ करती । अराजकता सरकार की हुआ करती है। और इस समय सरकार की तरफ से इतनी अराजकता है कि जो कायदे कानून हैं उनका बिना पक्षपात के इस्तेमाल तक नहीं हो पाता। यह भ्रष्टाचार आखिर क्या चीज़ है, यह नजरबन्दी का जो कानून है यह कानून को काट रहा है।

यह जो नजरबन्दी का कानून है, मैंने बताया कि किस तरीके से अफसर लोग दिमागी आलसी बन जाते हैं। हमें गिरफ्तारी के खिलाफ अधिकार मिला हुआ है, जब उस अधिकार को आप खत्म कर देते हैं और गिरफ्तार हम कर लिये जाते हैं तो जितने

कलक्टर, कमिश्नर और दूसरे अफ़सर हैं वे आलसी बन जाते हैं। खुद गृह मंत्री आलसी बन जाते हैं, प्रधान मंत्री आलसी बन जाते हैं और उस आलस के कारण फिर समाज में ऐसी व्यवस्था छा जाती है कि कानून का राज्य नहीं रह जाता है। यह नजरबन्दी कानून आप खत्म कीजिये उसके बाद जितने लोग हैं सब चंट होंगे। जिस तरह सितार के ढीले तार कसने से वह अच्छा बजा करता है उसी तरह से यह सरकार नजरबन्दी कानून खत्म कर देने से अच्छा बजने लगेगी। अभी सितार ढीला पड़ गया है और यह नजरबन्दी कानून उस सितार को ढीला बनाता जा चला रहा है। यह एक सिद्धान्त है जिस पर कि इस सरकार को बहुत अच्छे तरीके से गौर करना चाहिए।

ख़ास तौर से सरकारी अराजकता की मैं बात करूंगा क्योंकि यहां पर बहुत ज्यादा जिक्र किया गया है लोगों की अराजकता का, गुंडों का, कम्यूनिस्टों का और अहिंसकों का। मैं कम्यूनिस्टों का तरफदार नहीं हूं। कम्यूनिज्म और साम्यवाद को मैं नापसन्द करता हूं हालांकि कम्यूनिस्टों के बारे में जो व्यक्ति हैं थोड़ा बहुत, मैं कुछ और ढंग से सोचने लगा हूं जितना कि मैं समझे 10—15 वर्ष पहले सोचा करता था। एक जमाना था जब कि मसानी साहब और मैं दोनों एक दूसरे की बात को सुना करते थे। अब मैं उनकी बात थोड़ी बहुत तो ज़रूर सुनने लगा हूं और अगर वह मेरी भी बात सुनें तो ठीक होगा। वह कम्यूनिज्म या साम्यवाद से तो चाहे नफ़रत करें लेकिन व्यक्तिगत कम्यूनिस्टों से नफ़रत न करें। इस तरीक़ से कहना कि यह नजरबन्दी इसलिए जरूरी है कि कम्यूनिस्टों को गिरफ्तार करके रक्खा जाये, ठीक नहीं है। अगर आप चाहो तो कम्यूनिज्म को, साम्यवाद को नजरबन्द करो लेकिन कम्यूनिस्टों को नज़रबन्द मत करो। यह बहुत बड़ा फर्क होता है।

मुझे यहां पर श्री त्रिवेदी जी की तारीफ़ कर देनी है हालांकि जो कम्यूनिस्टों का सिलसिला है उसको देखते हुए तो यह कहना पड़ता है कि अब उनका रवैया बहुत कुछ सरकार के साथ चला जा रहा है। मुझे कल यह देख कर हैरत हुई कि श्रीमती रेणु चक्रवर्ती बजाय इसके कि हम सदस्यों के अधिकारों को बढ़ायें इस तरह के व्यवस्था के प्रश्न उठाया करती हैं जिन से सदस्यों के अधिकार कुछ कम हो जायें। मान लीजिये कि अगर कल मुझे अपना मौलिक बयान देने दिया गया होता तो कुछ सदस्यों के अधिकार बढ़ जाते। और उनके भी कुछ अधिकार बढ़ जाते। जब वह स्कूल, कालिज में पढ़ायेंगी तब तो इंगलिस्तान का उदाहरण देंगी कि किस तरीके से सदस्यों ने अधिकार बढ़ाये लेकिन यहां नहीं चाहतीं कि सदस्यों के अधिकार बढ़ें।

... मैं इसलिए इस अराजकता के बारे में बहुत जोर से कहना चाहता हूं कि सरकार में अराजकता और प्रशासन में बहुत ज्यादा अराजकता फैल गई है। खासदे कानून का बहुत

कम ख्याल रखा जाता है? उसका इस्तेमाल नहीं करते। वह वृत्ति नहीं रह गयी और नतीजा यह होता है कि वह सारे देश में यह भावना फैल गई है कि स्थिरता जिस तरीके से भी हो बना कर रखो। यह स्थिरता क्या है? इसके लिए कुछ थोड़ा सा आपको 1000—1500 वर्ष के इतिहास की तरफ ध्यान देना होगा। हिन्दुस्तान बहुत स्थिर हो गया है इतना स्थिर हो गया है कि आधा मुर्दा बन गया है। आधा तो मैं यूं ही कहे दे रहा हूँ पूरे का पूरा करीब मुर्दा हो चुका है। यह देश पिछले 1000—1500 वर्ष में एक बार भी अन्दरूनी जालिम के खिलाफ़ विद्रोह नहीं कर पाया है। जब कभी उसने थोड़ा बहुत विद्रोह किया है तो विदेशी आक्रमण या विदेशी राजाओं के खिलाफ किया है लेकिन अन्दरूनी अत्याचारों के खिलाफ देश ने विद्रोह नहीं किया है। इसलिए बहुत ज्यादा इसको स्थिर मत बनाओ। मैं तो यहां यह भी कहना चाहूंगा कि थोड़ी बहुत स्थिरता जनता में आये तो यह अच्छा होगा। हमारी जनता मुर्दा बन चुकी है। उसको अस्थिर बनाओ, उसे चंचल बनाओ। उसमें कुछ क्रियाशीलता लाओ। अगर कुछ गड़बड़ करना चाहे तो गड़बड़ भी वह करे क्योंकि इस गड़बड़ से उसमें कुछ तो जान आयेगी। खाली सवाल उठता है कि यह गड़बड़ कैसी हो यह गड़बड़ हिंसक हो या अहिंसक हो, तो मैं अपनी राय साफ बता दूं कि वह गड़बड़ अहिंसक हो तो अच्छा होगा क्योंकि हिंसक गड़बड़ी में मामले और ज्यादा बिगड़ जाया करते हैं। इसलिए मैं गृह मंत्री जी से एक निवेदन करना चाहूंगा और वह यह कि वह ताव में न रहा करें और ताव में रहने की बजाय वह थोड़ा बहुत नम्र होकर बोला करें....

कुछ तरीके ऐसे हैं जिन पर अगर आप ध्यान रखें तो अच्छा होगा। सिर्फ अपनी वाणी पर ही नहीं बल्कि अपने मन के ऊपर भी आप अगर ध्यान रखें तो बेहतर होगा। खैर वह एक अलग बात है। अभी मैं एक दूसरी चीज कह रहा था और वह यह कि अराजकता से मत घबराईये। अपने घर के अन्दर अपनी सरकार के अन्दर अराजकता आती है तो उसे देख कर मत घबड़ा जाईये। अगर मान लीजिये जनता के अन्दर कुछ पत्थर फेंकने, कुछ गोली चलाने, कुछ गुंडई करने की भावना आती है और वह उसका इस्तेमाल करती है तो ठीक है आप अपने डंडे का इस्तेमाल करो लेकिन मेरा जैसा आदमी जो कानून तोड़ता है, सत्याग्रह करता है, इस समाज को बदलना चाहता हो और देश को जानदार बनाना चाहता हो क्योंकि हम समझते हैं कि अगर देश के अन्दर के जालिमों के खिलाफ हम लड़ते रहेंगे तब हम बाहरी आक्रमण के खिलाफ भी अपनी कोई कार्यवाही कर सकेंगे, हमारे सम्बन्ध में जरा बात दूसरे ढंग से देखना।

सभापति महोदय, अब मैं खाली एक बात साफ कर देना चाहता हूँ क्योंकि मेरे बारे गलतफहमी फैल गयी है जैसे कि मैं कोई बहुत निराश हूं। मैंने यहां पर कई बार कहा है

कि यह सरकार इतनी जालिम है और हम इतने निकम्मे हैं कि हम इसे खत्म नहीं कर पा रहे हैं। यह तो मेरे विश्वास को बतलाता है कि आखिर इतना होते हुए भी मैं इस बात में लगा हूँ कि यह सरकार पलटी जाय। यह मेरा विश्वास है और मेरी आशा है कि यह सरकार खत्म हो। आज का नजरबन्दी जैसा कानून जो कि 22 वीं धारा को खत्म करने वाला है उस नजरबन्दी कानून को बार बार हर दफे हम ताजी रात हिन्द जैसी किताब पर ला रहे हैं तो यह मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान की जनता जरूर उठेगी, बलवा करेगी क्यों कि उसके बिना इस देश का पुनर्जीवन नहीं है। सवाल खाली इतना है कि वह हिंसा से होगा या अहिंसा से होगा। परछाई हमारे बहुत ज्यादा दिमागों पर मत आने दो क्योंकि उसका नतीजा कुछ खराब हो जाया करता है.....

मैंने आपसे कहा डंडा हम पर चलता है। डंडा चलाने वाले आप है इसलिए आप शान्त रहो। हमको चिल्लाने का हक है। हमको गुस्सा करने का हक है। शान्त रह कर अपना डंडा चलाते चलो, अलबत्ता चलाते वक्त जरा यह देखना कि कायदे कानून से चलाओ कायदा कानून इसमें नहीं है। नजरबन्दी का कायदा खत्म करो। उसके बाद आप देखोगे कि खुद आप का आचरण, आपका दिमाग आपकी बातें और आपका सोचना शुद्ध होने लगेंगे क्योंकि आपके सामने एक कटान आ जायेगी कि भाई यह हमारी मर्यादा है इसके ऊपर नहीं जा सकते। दिन रात मर्यादा पुरुषोत्तम का नाम लिया करते हो, 21 वीं और 22वीं धारा की मर्यादा है। हिन्दुस्तान के नागरिकों को न केवल स्वतन्त्र रहना है बल्कि हमेशा अपने मन में विश्वास रहना चाहिए कि मैं सुरक्षित हूं। जब हिन्दुस्तान आजाद हुआ था तब मुझे यह भावना हो गई थी कि अंग्रेज जिस तरीके से मुझे बार बार पकड़ लिया करते थे कम से कम अब पकड़ा नहीं जाऊंगा लेकिन अब वह भावना नहीं है। अभी दो, तीन दिन की बात है कि जार्ज फरनाडेंस जो कि नजरबन्दी कानून के मातहत गिरफ्तारी में थे, वह छूट गये। तबियत तो मेरी थी कि उसके लिए आपको धन्यवाद देता लेकिन जिस ढंग से वे छूटे हैं उसका मैं यहां पर जिक्र नहीं करूंगा। घबड़ाना मत। 25-30 हजार आदमी उनको स्टेशन पर लेने आये। यह चीज किसी देशभक्त के साथ ही होती है। इसी तरह का एक केस मैं और बतलाऊं कि दरभंगा के काग्रेस अहमद कैफी जेल में पड़े हुए हैं। वे किस लिए नजरबन्द हैं? उनको इसलिए जेल में डाला गया है कि सरकार 110 रुपया मिट्टी काटने के लिए एक कम्पनी को देती है जिस कम्पनी के चेयरमैन यहीं के एक सदस्य हैं, फिर से आने की बड़ी जबरदस्त कोशिश कर रहे हैं। मजदूरों को मुश्किल से 40—50 रुपया उस मिट्टी का मिलता है। इन सब कामों के लिए यह सुरक्षा कानून और नजरबन्दी कानून का इस्तेमाल हो रहा है। थोड़ा आप इस पर गम्भीरतापूर्वक सोच लीजिये और इस सुरक्षा कानून व नजरबन्दी कानून को अब खत्म कीजिये।

# 9

# भ्रष्टाचार*

...दुराचार और करप्शन या भ्रष्टाचार, ये सब एक ही शब्द हैं और जब हम इस प्रश्न पर विचार करें, तो सोचें कि भ्रष्टाचार गंगोत्री पर हो रहा है, इसलिए गंगा के निचले मैदानों पर सफाई करना अब बिल्कुल व्यर्थ है। और जब गंगोत्री पर सोच-विचार करते हैं, तो मैं सभी माननीय सदस्यों से अर्ज करूंगा कि वे जरा नम्रता से बातें सुनें, गुस्सा मुझ पर न करें, गुस्सा करें उस हालत पर, जिस में आज हिन्दुस्तान सड़ता चला जा रहा है। मैं कोशिश करूंगा कि मेरा गुस्सा भी कुछ धम्मा हुआ रहे, लेकिन मैं चाहूंगा कि दूसरे माननीय सदस्य भी अपने गुस्से को कुछ थाम कर बैठें। अगर मेरे मुंह से कुछ शब्द निकल जायें, तो वे जरा इस बात पर ध्यान दें कि इस सड़ांध को दूर करना चाहिए...

...खैर, मैं कह रहा था कि भ्रष्टाचार गंगोत्री पर है। कानून का राज्य हिन्दुस्तान में नहीं रह गया है, मनमानी का राज्य हो रहा है। नियम अच्छे नहीं हैं, या उन का पालन नहीं होता है। नतीजा होता है कि सरकार के कामों में पक्षपात भरा हुआ है। उस पक्षपात में लोगों को पैसे का फायदा होता है या नहीं, यह दूसरे नम्बर का सवाल है। पक्षपात, मनमानी, घूसखोरी और नियमों की अवहेलना, ये सब भ्रष्टाचार में समझे जाने चाहिए।

और भ्रष्टाचार है क्या? सिर्फ ईमान की कमी नहीं है, समझ की भी कमी है। मैं इस वक्त संसद् में भी इस बात की कमी पाता हूं कि लोग भ्रष्टाचार को केवल बेईमानी समझते हैं। मैं कहना चाहता हूं कि यह केवल बेईमानी नहीं है यह नासमझी भी है। आज हिन्दुस्तान और दुनिया का जो स्वरूप हो गया है, उस में जब तक हम समझ का इस्तेमाल नहीं करेंगे और यह जानने की कोशिश नहीं करेंगे कि क्या अवस्था है, जिस में भ्रष्टाचार निकलता है, क्या है भ्रष्टाचार, क्यों है, उस के कौन से कारण हैं, कहां कहां हैं, क्या उस के रूप हैं, आदि तब तक हम भ्रष्टाचार को दूर नहीं कर पायेंगे। इसी समझ के फेर को मैं अब भी सरकार में पूरी तरह से पाता हूं क्योंकि जो आखिरी तरीका सरकार ने भ्रष्टाचार को दूर करने का निकाला है, केन्द्रीय निगरानी कमीशन का, उस के क्या मानी

* लोक सभा वाद-विवाद, 21 दिसंबर 1963

होते हैं? यह कि जहां कहीं भ्रष्टाचार होगा, उस को केन्द्रीय निगरानी कमीशन पकड़ेगा। यह तो इलाज का तरीका है। जब कोई पाप हो जाये, तो उस पाप की सजा देने वाला तरीका है। वह तरीका अभी तक सरकार के सामने नहीं है कि भ्रष्टाचार का निरोध किया जाये, उस को रोका जाये।

भ्रष्टाचार की एक रोक की दृष्टि होती है और एक इलाज की दृष्टि होती है। मैं सब से पहली बात यह कहना चाहता हूं कि केन्द्रीय निगरानी कमीशन में रोक की दृष्टि बिल्कुल नहीं है, केवल इलाज की दृष्टि है। और वह फेल हो कर रहेगा, उस का एक बहुत बड़ा कारण मैं आप को बताये देता हूं कि जब कभी कोई बड़ा आदमी पकड़ा जायेगा, तो वह छूट जायेगा और सिर्फ छोटे-छोटे लोगों को सजा मिलेगी। तो इलाज की दृष्टि से भी यह तरीका बिल्कुल नाकामयाब साबित होगा और जहां तक रोक का सवाल है, गृह मंत्री के सामने उस का तो कोई तरीका ही नहीं है।

मैं आप को एक बात और बताऊं कि आज हिन्दुस्तान ने अच्छे-अच्छे तरीके निकाल लिये हैं— एक्जी सजा तक के तरीके निकाल लिये हैं। जब शराबबन्दी के मामले को ले कर लोग गिरफ्तार हुआ करते थे तो अवैध शराब बनाने वालों ने अपने बीच में से कुछ लोगों को इसलिए निकाल दिया कि भई, पुलिस को खुश करने के लिए इतनी तादाद में तुम पकड़े जाया करो, इस से पुलिस भी खुश रहेगी, मंत्री भी खुश रहेंगे और हमारा धंधा चलता रहेगा। अगर बहुत जरूरी हुआ, तो उसी तरह की एक्जी गिरफ्तारी करवा कर लोग केन्द्रीय निगरानी कमीशन को बिल्कुल धोखा और बांझ बना डालेंगे।

उस के अलावा मैं आप का ध्यान गृह मंत्री के उस बयान की तरफ दिलाना चाहता हूं, जिस में उन्होंने कहा कि साधुसन्त और जनमत तथा समाज के नेता लोग इस सवाल को ठीक कर सकते हैं और हमारे यहां जो भी भ्रष्टाचार है, उस को दूर कर सकते हैं। आखिर यह नैतिकता है क्या? क्या यह साधु-सन्तों की चीज है? आज राजनीति और आर्थिक जीवन दुनिया में इतने पेंच हो गए हैं कि यह साधुसन्तों वाला मामला नहीं रहा है कि जा कर लोगों को कहा जाय कि तुम सच्चे हो जाओ, ईमानदार हो जाओ, और उस से सब मामला सच्चा और ईमानदार हो जायेगा।

मैं तो यह कहना चाहता हूं कि जो मंत्री सब से ज्यादा सच्चाई की, ईमानदारी की, जात के खिलाफ बात करते हैं, वह सब से ज्यादा अपनी जात-बिरादरी के पक्षपात का काम किया करते हैं। और आप जानते हैं कि कौन मंत्री हिन्दुस्तान में सब से ज्यादा जात के खिलाफ बोलता है, वही मंत्री आज जात के मामले में सब से बड़ा दोषी है, यह मैं अच्छी तरह से कहना चाहता हूं।

इसलिए यह मामला समझ का है और मैं आप को समझ का एक और उदाहरण दिये

देता हूं। बहुत दिनों पहले मैं ने भी उस प्रस्ताव को माना था—तब मेरी समझ भी कुछ कम थी—कि पांच सौ रुपये महीने से ज्यादा न तो किसी मंत्री को, और न किसी सरकारी नौकर को, दिया जाये। लेकिन वकील, डाक्टर, व्यापारी और जागीरदार, इन सब की आमदनियों पर कोई रोक नहीं लगाई गई। यह कैसे हो सकता है कि चारों तरफ तो लालच का समुद्र बहता रहे और बीच में एक छोटा सा टापू मंत्रियों और सरकारी नौकरों के लिए बना दिया जाये—कर्तव्य का टापू। वह कर्तव्य का टापू बह कर रहेगा। लालच का समुद्र उस को बहा डालेगा। इसलिए यह बहुत बड़ा प्रमाण है कि यह मामला समझ का है।

इस के अलावा मैं आप का ध्यान इस तरफ भी दिलाऊं कि लोग कहने लग गए हैं कि भ्रष्टाचार तो जीवन का अंग बन गया है और मैं फिर बड़ी नरमी से—अभी मेरे मुंह से शब्द निकल रहे थे "मेरे पुराने कांग्रेसी साथियों से", लेकिन दिमाग नहीं कहता कि मैं उन शब्दों को कह दूं, दिमाग नहीं कहता, मन कभी कभी फिसल जाता है—यह अर्ज करूंगा कि जरा सोचो कि गांवों में जा कर क्या क्या प्रचार किया करते हो। यह कि हमारा पेट तो भर चुका है और अगर आप उन को वोट दोगे, जिन का पेट खाली है, तो वे आ कर पेट भरेंगे। गांव वाले सोचते हैं, "हां, भई, बात तो सही है, न कांग्रेस वालों ने खा खा कर अपना पेट भर लिया है। अगर किसी और पार्टी को लायेंगे, तो वह नये सिरे से खायेगी। इसलिए अच्छा है कि इन घूसखोरों को ही सरकार में रहने दो।" यह हंसने की बात नहीं है। यह इतनी लज्जा की बात है। मेरा मन भी व्याकुल हो जाता है कि सारे हिन्दुस्तान को आज भ्रष्टाचार का पाठ पढ़ाया जा रहा है निर्वाचनों के जरिये।

उस के अलावा एक बड़ा भारी सिद्धान्त निकाला गया। अर्थ-शास्त्रियों ने निकाला, हिन्दुस्तान के अर्थ-शास्त्रियों ने कि जब कभी कोई पिछड़ी आर्थिक व्यवस्था तरक्की करेगी, आगे बढ़ेगी, माल ज्यादा होगा नहीं, पैदावार के ढंग पुराने होंगे, तो उस में भ्रष्टाचार लाजिमी है। मैं समझता हूं कि बात तो मैंने बिल्कुल साफ कह दी, लेकिन चूंकि अंग्रेजी को कम जानने वाले लोग हिन्दुस्तान में बहुत ज्यादा हैं, इसलिए वे "डेवेलपिंग इकानोमी" कहा करते हैं—कहा करते हैं कि डेवेलपिंग इकानोमी में तो भ्रष्टाचार आवश्यक है। मैं कहना चाहता हूं कि यह बिल्कुल झूठा सिद्धान्त है। अगर कोई आर्थिक व्यवस्था सुधारनी है, जोकि कमजोर है, पिछड़ी है, तो उस में भ्रष्टाचार बिल्कुल नहीं रहना चाहिए और उस का एक नमूना मैं आप को दिये देता हूं। हालांकि महात्मा गांधी का देना चाहिए, लेकिन मैं रूस का देता हूं।

रूस ने लगातार चालीस, पचास बरस तक इस बात का ख्याल नहीं किया कि उस के यहां इस्तेमाल की चीजें कैसी बनती हैं। उस्तरा वे ऐसा बनाते थे कि जिस से दाढ़ी

बनाते हुए छिल जाये। विदेशी लोग वहां की यात्रा कर के आ कर कहते थे कि रूस में तो खपत की चीजें बहुत खराब है। लेकिन वे अपनी पैदावार की बुनियाद को बना रहे थे, खपत में अपने पैसे को बरबाद नहीं कर रहे थे। इस तरह से अगर हम भी अपने देश में खपत के ऊपर जोर न दे कर के पैदावार पर जोर दें तो यह भ्रष्टाचार का मामला इतना किसी भी सूरत में नहीं बढ़ सकता था।

सिंहासन और व्यापार के सम्बन्ध की तरफ भी मैं आप का ध्यान खींचूंगा। यह संबंध जितना हिन्दुस्तान में दूषित, भ्रष्ट, बेईमान हो गया है, उतना दुनिया के इतिहास में कभी नहीं हुआ है। व्यापार और सिंहासन का सम्बन्ध अमरीका इंग्लिस्तान, जर्मनी आदि किसी भी देश में इतना नहीं बिगड़ा जितना यहां बिगड़ा है। सिद्धान्त बतलाने के बजाय मैं आपको एक मिसाल देता हूं। नेशनल मोटर्ज पंजाब की एक कम्पनी है। उस कम्पनी को चलाने वाला मंत्री का बेटा है। उसे सरकार से लाइसेंस, सरकार से कोटा आदि मिल जाया करता है। वह पैसा बनाया करता है। जब सवाल उठता है तो कहा जाता है कि तुम इस उदाहरण को क्यों लाते हो, क्या पंजाब के मुख्य मंत्री ने कहीं किसी से सिफारिश की है कि तुम मेरे बेटे के लिए फलां फलां लाइसेंस दो, कागज़ दिखाओ कि उसने ऐसा किया है, दूसरी बातें बतलाओ। मैं एक विशेष बात कहना चाहता हूं। हमें केवल यह देखना है कि क्या किसी बेटे या बेटी या रिश्तेदार ने तथा मेरी तो यह राय है कि दो पीढ़ी तक के रिश्तेदारों ने, उनके सम्बन्धी के सिंहासन पर बैठने के कारण कोई लाभ उठाया है या नहीं। आज हिन्दुस्तान में यही कसौटी रहनी चाहिये कि सिंहासन पर बैठे हुए लोगों की मदद ले कर के क्या किसी ने लाभ उठाया है व्यापार में।

और कसौटी मैं आप के सामने रखना चाहता हूं। बहुत ज्यादा कहा जाता है कि क्या मंत्रियों के बेटे नहीं हैं? इस का पहला जवाब तो यह है कि क्या दूसरों के बेटे नहीं हैं, क्या खाली मंत्रियों के ही बेटे हैं जो हमेशा-हमेशा हर तरह से फायदा उठाते रहेंगे। लेकिन आज की स्थिति में हमारी आर्थिक व्यवस्था में, एक हिस्सा है होड़ वाला, खाली होड़ वाला और दूसरा हिस्सा है, परमिट, कोटा, लाइसेंस इत्यादि वाला। इन दोनों में हमें अन्तर करना सीखना चाहिये। स्वतंत्र देशों की बात कही जाती है, जर्मनी, इंग्लिस्तान वगैरह की बात कही जाती है, जो खाली होड़ वाले हैं, ज्यादातर खुला होड़ वहां होता है, सरकारें कोई दखल नहीं देती हैं। ज्यादातर वहां यही स्थिति है। अगर यहां पर मंत्रियों के बेटे ज्यादा अक्लमन्द हैं बेटियां ज्यादा अक्लमन्द हैं और इस में मैं उनके रिश्तेदारों को भी शामिल करता हूं तो उन्हें खुले व्यापार की होड़ में डाल दो और अगर तब कोई उस का लड़का तरक्की कर सके तो करे। लेकिन ऐसा कोई व्यापार जहां पर कि मंत्री को कोई कोटा या परमिट या लाइसेंस देना पड़ता हो, उस में मंत्री के दो पीढ़ी तक के रिश्तेदारों

को बिल्कुल नहीं आना चाहिये। जब तक यह सिद्धान्त आप नहीं अपनाते हैं, तब तक सिंहासन और व्यापार का सम्बन्ध बिगड़ा हुआ ही रहेगा।

अब मैं दूसरी चीज़ नौकरी के बारे में कहता हूं। कोई भी सिंहासन पर बैठा हुआ आदमी अपने रिश्तेदारों को ऊंची ऊंची नौकरियां न दिलवा सके, इस के बारे में भी कोई तरीका निकाला जाना चाहिए। आप इसका भी सबूत पूछेंगे। सबूत यह है कि उसको और तरीके से वह नौकरी नहीं मिलती है, पहले नहीं मिली थी, ज्यों ज्यों अब्बा जान तरक्की करते हैं, अपने मंत्री पद में, त्यों त्यों बेटा जान भी तरक्की करते हैं व्यापारी महकमे में। यह इतना बड़ा सबूत है कि इस को झुठलाया नहीं जा सकता है। इस सम्बन्ध में भी कोई नियम अच्छी तरह से बना दिया जाना चाहिये...

मैं अर्ज़ करूं कि मैं पुराने हिन्दुस्तान की आखिरी राजधानी का नुमाइंदा हूं। पुराने हिन्दुस्तान की आखिरी राजधानी जिस को कन्नौज कहा जाता था, उस के नुमाइंदे की हैसियत से मैं इस नई राजधानी के मुताल्लिक कुछ साहित्यिक शब्द कहने वाला था लेकिन मुझे डर लग रहा है कि शायद ठीक समझें या न समझें।

दिल्ली की राजधानी बहुत नई है, कुल सात आठ सौ बरस समय की सब से खूबसूरत कुलटा है। इस में कोई सन्देह नहीं है क्योंकि वह कभी भी विदेशी हमलावरों के सामने टिक नहीं पाई। सात आठ सौ बरस का इतिहास राजधानी का है, इसको मैं संदेश देना चाहता हूं। कन्नौज से अभी मैं आया हूं, उसको देख कर आया हूं। वहां नाला था। उससे पानी बहा करता था, गन्दगी हट जाती थी, बरसात या बाढ़ के मौके पर लोगों को तकलीफ नहीं होती थी, 1 नाला कोई छः सात सौ साल बरस पुराना है। वह अब नाला भर गया है, समय ने नुकसान किया है। मिट्टी आ गई है। साथ ही एक नुकसान यह भी हुआ है कि ५०-६० आदमियों ने वहां की जमीन पर अवैध कब्जा कर लिया है, खेती करने लग गए हैं, कुछ सब्जी वगैरह बोने लग गए हैं। इस लिये मैं निवेदन करूंगा कि मामला एक तरह से हजार डेढ़ हजार बरस के रोग का है और दूसरे पन्द्रह बरस के कोढ़ का है डेढ़ हजार बरस का जो रोग है, मैं चाहता हूं कि हमेशा उसी के बारे में ज्यादा बोलूं क्योंकि यह जो पन्द्रह बरस वाली चीज यह तो केवल वक्ती चीज़ है। वे सब मंत्री प्रधान मंत्री, मुख्य मंत्री आते जाते रहते हैं, करोड़ों की तादाद में आते जाते रहते हैं। मैं अपने मन को कभी कभी अच्छी तरह से रोक नहीं पाता हूं। उसका कारण यह है कि वक्त कम देते हैं वर्ना अभी तक डेढ़ हजार बरस के रोग का इलाज जोकि आज इस पन्द्रह बरस के कोढ़ में जा कर जमा हुआ है, उसको मैं विस्तार से बताता कि डेढ़ हजार बरस वाला रोग क्या है? हिन्दुस्तान एक घर नहीं है, एक हजार या दस हजार घर बन चुका है। जितनी जातियां है, उन में लूट मची हुई है, उन जातियों की अपनी अपनी

सोचने की दृष्टि हो गई है, उनका स्वार्थ, उनका न्याय, उनका सोचना, उनका विवेक आदि जो है, इन सब का मतलब बदल गया है। सोचने और बोलने की भी दीवाल, इंसाफ और नाइंसाफ के बीच की दीवाल, ईमानदारी और बईमानी के बीच की दीवाल ऐसे वक्त में गिर जाया करती है, जहां अपने खुद के घर का सवाल उठता है। इन दस हजार घरों में यह हिन्दुस्तान लुटा हुआ है, पिछले डेढ़ हजार बरस से लुटा हुआ है। जब तक आप फर्क नहीं करेंगे तब तक भ्रष्टाचार बन्द नहीं हो सकता है क्योंकि हर आदमी सोचेगा कि मैंने अपनी जात, अपनी बिरादरी, अपने बेटों आदि के लिये कुछ किया तो इस में क्या बुरा किया, अच्छा ही किया। हमारे पुराने जो ग्रन्थ हैं, मैं उनका नाम नहीं लूंगा। उन से यह परम्परा चली आई है कि अगर कोई आदमी बड़ी जगह पर पहुंच जाए तो अपने लोगों को फायदा पहुंचाय। अभी तक वह चीज़ चली आ रही है।

उसी के साथ साथ मुझ पर लांछन लगाया जाता है। आपने देखा होगा कि मैंने प्रधान मंत्री के बारे में कुछ नहीं कहा है और बहुत कम मैं कहा करता हूं। लेकिन जब मुझ पर लांछन लगाया जाता है तो मैं वक्ती बात उठाता हूं। बड़े अदब के साथ मैं कहना चाहता हूं कि मैंने अपनी सारी जिन्दगी में माननीय प्रधान मंत्री के बारे में एक भी वैयक्तिक बात नहीं उठाई है। हमेशा वह बात उठाई है जो शासन से सम्बन्ध रखती है। अब अगर उनके शासन काल में उनके कुटुम्ब, उनकी बिरादरी के लोग हमेशा तरक्की पाते रहें तो यह वैयक्तिक चीज़ नहीं, यह सार्वजनिक चीज़ है। इसके जवाब में कह दिया जाता है कि क्या करें अगर उन में योग्यता है तो। अगर आप प्रधान मंत्री होते तो इस वक्त सब से ज्यादा योग्यता कहां होती। अगर वित्त मंत्री प्रधान मंत्री बन जायें, जैसे अभी भी कभी कभी सुना जाता है कि शायद हो जाएं तब आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान के सब से ज्यादा योग्य आदमी तमिल, अयंगार हो जायेंगे, इस में कोई सन्देह नहीं है। इस तरह से योग्यता की कसौटी अपने देश में चलती रहती है। जब कोई बड़ा आदमी उससे भी बड़ी जगह पर पहुंच जाता है तो उसके कुंबे के सारे लोग, बिरादरी के सारे लोग इतने लायक बन जाते हैं कि उनके सामने कोई टिक नहीं पाता है, बाकी लोग कोई हैसियत ही नहीं रखते हैं। यह जो सिलसिला है इसको हमें बदलना पड़ेगा। जब तक हम चार हजार या दस हजार घरों की अलग अलग दीवालों को नहीं तोड़ेंगे तब तक भ्रष्टाचार खत्म होने वाला नहीं है।

एक तरफ तो जबर्दस्त भूख है। साढ़े ४३ करोड़ लोगों की भूख है और दूसरी तरफ पचास लाख लोग यूरोप और अमरीका की नकल करते हुए लगातार अपने जीवन स्तर को बढ़ाने की सोचते हैं, आज हिन्दुस्तान का क्या आदर्श बन गया है। कुर्सी बढ़िया लो, फर्निचर बढ़िया लाओ। ये कह देते हैं कि फलां के यहां चूंकि बड़ा बढ़िया सोफा देखा

है, यहां क्यों नहीं आ जाता है। जब मंत्रियों और उनकी बीवियों के मन में ऐसे विचार बनते और पनपते रहेंगे तो कहां से सदाचार कायम रह सकता है। एक तरफ साढ़े ४३ करोड़ की भूख, इतनी जबर्दस्त भूख कि उस के सामने ईमानदारी और बेइमानी कुछ नहीं रह जाती। मैं आप से कहना चाहता हूं कि दो पैसे और चार पैसे के लिये साढ़े ४३ करोड़ भी बेईमान हो सकते हैं लेकिन ५० लाख लोग लाखों करोड़ों लोगों के लिये बेईमान होते हैं। एक तरफ तो ऐसे लोग हैं जो अपनी तन्खाह से सौ गुना, पांच सौ गुना ज्यादा खर्च किया करते हैं और दूसरी तरफ मैं समझता हूं कि प्रशासन में लगे हुए जितने भी आदमी हैं वे कम से कम चौगुना अपनी तन्खाह का खर्च किया करते हैं। इस तरह से यह जरूरी हो गया है कि हम ने पन्द्रह वर्षों में जो कोढ़ इक्ट्ठा किया है उस को हम धोयें.....

...जरूरी हो जाता है कि हम इन दोनों अवस्थाओं का इलाज निकालें। एक तो महान गैरबराबरी, ऐसी भूख जो लोगों को बेईमान बनाती है और दूसरी जीवन स्तर को लगातार ऊंचा करते रहने की इच्छा जो लोगों को बेईमान बनाती है। मैं कहना चाहूंगा कि ज्यादा ध्यान देना। मैं सदन के सदस्यों से कह रहा हूं, आप तो ज्यादा ध्यान दीजियेगा ही। महात्मा गांधी का युग तो सादगी और कर्तव्य का युग था, माननीय प्रधान मंत्री का युग फैशन और विलासिता का युग है। इन पचास लाख लोगों के लिये आप इस बात का ख्याल नहीं करते कि सारे देश की सामान्य अवस्था क्या है। जब केवल योरोप और अमरीका के जीवन स्तर की नकल किया करते हैं, जब इस बात को नहीं सोचते कि योरोप और अमरीका ने अपना जीवन स्तर, आज वाला, हासिल किया है ३०० वर्षों की लगातार मेहनत से, अपनी खेती और कारखानों को सुधार कर, अपनी पैदावार को बढ़ा कर, बिना पैदावार बढ़ाये हुए हम उस खपत की जब नकल करते हैं तो भ्रष्टाचार आवश्यक हो जाता है। इस लिये यह दो खास बातें मैं आप के सामने रखना चाहूंगा।

इसी तरह से इस सरकार ने सत्य का मुंह हिरण्य के पात्र से ढक कर रक्खा है। मैं इस तरह दो या ढाई हजार वर्ष पुराना शब्द इस्तेमाल कर रहा हूं। सत्य का मुंह सोने के बरतन से ढक कर रखा गया है। आप देखेंगे कि जीवन की हर एक दिशा में चाहे वह सेवक हों, चाहे साधु हों, चाहे वह सुधारक हों और चाहे एकेडेमी वाले हों, चाहे और किसी पढ़ाई लिखाई के दायरे में हों, जो लोग मंत्री नहीं बन सकते या बनना नहीं चाहते, उन लोगों का मुंह आधा या पूरा बन्द रखने के लिये सरकार बहुत ज्यादा रुपया खर्च किया करती है। मेरा अनुमान है कि पंचवर्षीय योजना और सरकार से सम्पूर्ण खर्च में से जो कुल ५० अरब रुपया साल भर में है, यह सरकार कम से कम २ अरब रुपया केवल सत्य का मुंह सोने से ढकने के लिये खर्च किया करती है। अगर उन का मुंह बन्द न

किया गया होता, तो मेरी बातें जल्दी फैलतीं। उन के ऊपर विवाद होता, उन पर सोच विचार होता। लेकिन चारों तरफ से विचार का गला घोट दिया जाता है क्योंकि यह लोग खुश रह जाया करते हैं।

...सच बोलना तो बहुत जरूरी होता है। उस के बिना सदाचार आ ही नहीं सकता। सच बोलना आज राजनीति में प्रायः खत्म हो रहा है। मान लीजिये मैं किसी चीज़ में फंस गया हूं और अगर मैं सच बोलूं तो मेरी गलती सामने आ जाये, तो अपनी गलती को छिपाने के लिये मैं झूठ बोल कर अलग हट जाना चाहता हूं। लेकिन झूठ बोलना एक फंसान हो जाता है। समझ लीजिए कि मुझे वाशिंगटन पहुंचना है सोमवार को सुबह, दस बजे। लेकिन मैं देखता हूं कि मैं वहां पहुंच नहीं सकता हूं, और यह कह कर एक फंसान निकाल सकता हूं, तो झट से कह देता हूं कि मेरी वहां जाने की इच्छा थी लेकिन जा नहीं सकता था क्योंकि मेरे पास कोई साधन नहीं थे। लेकिन आम तौर से जो झूठ बोला करता है वह ऐसी बात कहता है कि उसी में वह फंस जाया करता है, क्योंकि वाशिंगटन और लन्दन में कम से कम पांच घंटे का समय भेद है। जब मैं यह कह दूं कि मैं लन्दन तो सुबह पहुंच जाता तो उस के साथ मैंने यह भी कह दिया कि मैं वाशिंगटन भी उसी वक्त पर पहुंच जाता....

.....मैं प्रधान मंत्री जी के बारे में आप से बतलाना चाहूंगा। यह समझ का फेर नहीं। वह जरा मेरी बात पर ध्यान दें, मुझ पर गुस्सा न करें और मेहरबानी कर के अपनी तीन मदों के खर्च को वे अच्छी तरह से समझ लें। एक तो अनुदान की मद, दूसरी कोष की मद और तीसरी निधि की मद, जो अनुदान विभिन्न मंत्रालय दिया करते हैं। मैं खाली इतना कहना चाहूंगा कि अगर माननीय गृह मंत्री एक बार प्रधान मंत्री के घर में जा कर देख लें कि अनुदानों से क्या क्या मिला करता है तो उन्हें पता चलेगा कि जो दूसरे मंत्री और मुख्य मंत्री लोग और किसी जरिये से हासिल करते हैं वह प्रधान मंत्री कायदे के मुताबिक हासिल कर लेते हैं। इस के अलावा मैं आप से यह भी अर्ज करूं कि जो कोष हैं, जैसे कि प्रधान मंत्री का राहत कोष है, पिछले दस पन्द्रह वर्षों में उस में से डेढ़ करोड़ रुपया खर्च हुआ। उस के लिये कोई नियम नहीं है इस लिये खाली उन की स्वेच्छाचारिता चलती है। यह जवाब उन्होंने सदन में दिया था। ऐसे कोषों का इस्तेमाल कर के कोई भी आदमी अपनी राजकीय स्थिति को सुधार सकता है। अगर मेरे पास उस का सौवां हिस्सा भी हो जाए तो मैं आप से अदब से कहना चाहता हूं कि मेरे चारों तरफ भी न जाने कितने प्रकार के लोग होते और मेरी शक्ति भी कुछ बढ़ी हुई होती। राजनीतिक शक्ति को बढ़ाने का यह जरिया है....

.....मैं आपको एक दिल का दर्द बता दूं, और वह यह कि लोक सभा में इस के

ऊपर विचार होना चाहिए था—यह आप देखें कि नियमों को किस तरह से इस्तेमाल करना है—कि हिन्दुस्तान के आगे आज एक भयंकर खतरा खड़ा हो गया है। यह संसदीय सदाचार है। हमारे दोनों मोर्चों पर तनाव बढ़ गया है। लेकिन लोक सभा के इस सत्र में खाली एक तनाव की बार-बार चर्चा हुई है। सरकार के हाथ में यह जरिया रहता है कि जो चाहे अखबारों को खबर देती रहे। वह उनको कत्लों की, डकैतियों की, लूट की, गोलीबारी की खबरें दे कर जनता को उत्तेजित करती है। पाकिस्तान की सरकार तो पाजी है ही, लेकिन अगर हिन्दुस्तान की सरकार भी इन सब बातों को नहीं सोचती और ऐसी संसदीय हालत पैदा कर देती है तो यह अच्छा नहीं हुआ करता । यह भी नियमों की बात है।

इसी तरह से मैं आप से अर्ज करूंगा। मुझे तो खैर कोई ताकत की जगह पसन्द नहीं है। लेकिन अगर सचमुच कोई केन्द्रीय निगरानी कमीशन—सच्चा कमीशन—बनाया जाए जिसको वह अधिकार मिले कि वह दो चेतावनियां देने के बाद उसी ढंग के भ्रष्टाचारी मामले में हर किसी को गिरफ्तार कर सके—अध्यक्ष महोदय मैं "हर किसी को" कह रहा हूं—चाहे वह मुख्य मंत्री हो या प्रधान मंत्री हो या कोई हो, और यह अख्तियार मिले कि हिन्दुस्तान की आर्थिक व्यवस्था को अफ़सरेनों बदल सके, जो महान गैर-बराबरी इस देश को खाए जा रही है, उसको खत्म कर सके, खपत के ऊपर ध्यान न देकर पैदावार पर ध्यान दिया जाए, तो मैं आपसे निवेदन करता हूं कि दो वर्ष के अन्दर अन्दर मैं तो क्या माननीय महावीर त्यागी जी भी हिन्दुस्तान से भ्रष्टाचार को खत्म कर सकते हैं, लेकिन श्री नन्दा कभी भी नहीं खत्म कर सकेंगे यह बिल्कुल तै बात है।

मैं यह भी कह दूं कि पंचवर्षीय योजना, जिसके तहत २७ करोड़ आदमी सिर्फ तीन आने रोज पर रहते हैं और साढ़े १६ करोड़ आदमी एक रुपए औसत पर, तो मैं सात बरस के अन्दर अन्दर २७ करोड़ को तो आठ आने रोज पर ले आऊंगा और इन साढ़े १६ करोड़ को कम से कम डेढ़ या पौने दो रुपए रोज पर ले आऊंगा।

# 10

# अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का उत्थान*

यह सरकार सांप को छेड़ना जानती है लेकिन उस के दांत तोड़ना नहीं जानती है। अकाल के सांप को भाषा के सांप का सम्पत्ति के सांप को जिस तरह इस सरकार ने छेड़ कर के जगा दिया है उसी तरह जाति के सांप को भी इस सरकार ने जगा दिया है। जो ऊंची जाति के लोग हैं खास तौर से गांवों में उन को चिढ़ हो गयी है कि हरिजन और दूसरे पिछड़े उठ रहे हैं। लेकिन वास्तव में जो भी 7-8 करोड़ हरिजन हैं उन में से मुश्किल से 70—80 हजार हरिजन उठे होंगे । हो सकता है कि कुछ ज्यादा हों। हजार में एक । जब हजार में एक का सुधार हुआ हो तो ऊंची जाति के प्रायः सभी लोगों की आंखों में यह किरकिरी गिरने लग जाय तो समझ लें कि देश का कोई सुधार नहीं हो सकता है। इस का सब से बड़ा कारण शायद हमारी आजकल की राजकीय पद्धति है। वर्तमान सरकार दोषी है। हम लोग भी दोषी हैं अगर उस दोषी चीज का अनुकरण करें और वह यह है कि आज सरकार जो कुछ करती है वह बड़े लोगों के लिए करती है और इस दृष्टि से करती है कि हमारे वोट के ठेकेदार कितने मिलते हैं? भला करने के लिए देश को ऊंचा करने के लिए नहीं बल्कि असरदार लोगों को पकड़ा जाय जोकि वोट ला सकें। अब यह 70—80 हजार बाकी सब हरिजनों के लिए आकर्षण के केन्द्र बन जाते हैं और वे वोट के ठेकेदार बन जाते हैं, ...

जो भी पंच-वर्षीय योजनायें हैं, उनमें हरिजनों अथवा पिछड़ों के लिए अनुदान की रकम अलग से दे दी जाती है, लेकिन पूरी पंच-वर्षीय योजना से पिछड़े लोगों का कितना उद्धार हुआ, इसका मूल्य-माप कभी नहीं किया जाता है। पंच-वर्षीय योजनाओं में अन्य विषयों में मूल्य-माप होता है, न जाने कितनी रपटें हमारे पास आती हैं, लेकिन मैंने इस सरकार की एक भी रपट नहीं देखी है, जिसमें ऐसा मूल्य-माप हो कि पंच-वर्षीय योजना का रुपया खर्च करने पर हरिजन, आदिवासी या पिछड़े कितना सुधरे हैं और किस दिशा में सुधरे हैं। आज चौथी पंच-वर्षीय योजना बन रही है। उस में दो खरब और कुछ अरब रुपयों का खर्च होगा। हो सकता है कि हरिजनों के लिए 70, 80 करोड़ रुपया अलग से

* लोक सभा वाद-विवाद, 12 मार्च, 1965

दे दिया जायेगा—जरा सा छोटा सा एक पूछल्ला जोड़ दिया जायेगा। लेकिन जो सारा जानवर है पंच-वर्षीय योजना वाला, वह वास्तव में जो पहले से ऊंचे हैं, उनको और ऊंचा उठाता है और जो नीचे दबे हुए लोग हैं, उन पर कोई विशेष असर नहीं पड़ता है।

जहां ऐसी स्थिति है, वहां मैं पूरे समाज से यह कहना चाहूंगा कि एक व्यापक दृष्टि रखो। हमारी 48 करोड़ की आबादी है। उसमें 7-8 करोड़ हरिजन हैं। सब पिछड़े मिला कर करीब 43 करोड़ होंगे। जहां तक औरतों का सम्बन्ध है, मैं सबको पिछड़ा मानता हूं, चाहे वे किसी भी जाति की हों। सब मर्द-औरत मिलाकर पिछड़े 43 करोड़ होते हैं। अब रह जाते हैं ऊंची जाति के ग़रीब लोग। वे हैं करीब साढ़े चार करोड़। और पचास लाख हैं सचमुच बड़े लोग, जो ज्यादातर ऊंची जाति वाले हैं। जब तक हम इस वर्तमान सामाजिक दोष को नहीं समझ पायेंगे कि जो ऊंची जाति के साढ़े चार करोड़ ग़रीब लोग हैं, उन का मुंह लगा रहता है अपनी ही जाति के अमीर लोगों की तरफ और उन्हीं से वे अपना सोचने का तरीका लिया करते हैं, तब तक कोई सुधार नहीं हो सकता है। इन साढ़े चार करोड़ ऊंची जाति के गरीब लोगों का मुंह अपनी जाति के ऊंचों से मोड़ कर 43 करोड़ पिछड़ों की तरफ लगाना होगा और जब 43 करोड़ पिछड़ों और साढ़े चार करोड़ ऊंची जाति के ग़रीब लोगों की राजकीय दोस्ती की खिचड़ी पकेगी, तब उसमें से वह बारूद पैदा होगा, जो पचास लाख बड़े लोगों की ऐयाशी को जला कर राख कर देगा और फिर उसके ऊपर नये हिन्दुस्तान का निर्माण हो सकेगा। सिवाय इसके अब और कोई रास्ता नहीं रह गया है।

वास्तव में जितना भी आज हिन्दुस्तान है, वह टूट गया है मैं इस वर्तमान सरकार के पापों और कुकर्मों की सूची में सब से बड़ा पाप यह मानता हूं कि इसने लोगों की दृष्टि को तोड़ दिया—कहीं कोई व्यापक और सम्यक दृष्टि नहीं है। लोग विश्वास नहीं करते हैं कि सारा देश बढ़ सकता है, सारे देश की दौलत बढ़ सकती है। खाली अपना-अपना हिस्सा बढ़ाने में सब लगे हुए हैं।

इस लिए हरिजनों अथवा पिछड़ों को उनका हिस्सा कभी नहीं मिल सकता है, जब तक व्यापक दृष्टि नहीं बनेगी कि सब की दौलत बढ़ाओ। सब की दौलत तभी बढ़ सकती है जब हरिजनों की दौलत बढ़ेगी। मैं जानता हूं कि जिनके यहां हरिजन या पिछड़े काम करते हैं उनके मन में यह है कि अगर उनकी तनख्वाह पचास साठ रुपये हो जायेगी तो हमारा हिस्सा कम हो जायेगा। जब तक वे यह नहीं सोचेंगे कि जब हरिजनों, कुम्हारों, बर्तन साफ करने वालों या मेहतरों की तनख्वाह सौ, डेढ़ सौ, दो सौ रुपया महीना होगी तब सारे देश की दौलत बढ़ेगी, सारे देश की उन्नति हो जायेगी तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती है।

मुझे तो कई दफा लगता है कि अगर मेहतरों की तनख्वाह वह कर दी जाये,—अध्यक्ष महोदय, मैं कहना तो यह चाहता था कि जो प्रधान मंत्री की है लेकिन प्रधान मंत्री के तो ऊपर लवाज़िमात ऐसे हैं कि मैं वह नहीं कह सकता—जो मंत्रियों की है,—अगर श्री कृष्णमाचारी साहब की हो तो और अच्छा है क्योंकि उसमें और बहुत मामला आ जाता है,—अगर आज मेहतरों की तनख्वाह तीन चार सौ रुपया महीना कर दी जाये तो मैं समझता हूं कि बड़ा जबर्दस्त असर पड़ेगा और जो ये ऊंची जाति वाले लोग हैं तब इन में से बहुत से झाड़ू लगाना और पाखाना साफ़ करना शुरू करेंगे तब जाकर इस देश में कोई सुधार होगा।

# 11

# 'भारतीय इतिहास' की आलोचना*

जिस चीज पर हमें चर्चा करनी है वह संयुक्त राष्ट्र (यूनाइटेड नेशंस) के तहत यूनेस्को ने जो मनुष्य का इतिहास लिखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आयोग बनाया था और जो उसने किताब छापी उस पर है। यह है मनुष्य जाति के इतिहास की पहली जिल्द जो प्राग इतिहास और सभ्यता की शुरुआत से संबंध रखती है। इसको छापा है इतिहास के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने लेकिन इसकी जिम्मेदारी एक तो संयुक्त राष्ट्र, दूसरे संयुक्त राष्ट्र के द्वारा बनायी गयी संस्था यूनेस्को और तीसरे भारत सरकार पर पड़ती है। यहां तक कि इस अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास आयोग के साथ पत्र-व्यवहार करने वालों में डाक्टर राधाकृष्णन तक का नाम है। यह मैंने जिम्मेदारी की बात की।

अब सबसे पहले यह बताऊं कि शायद किसी शास्त्र पर यह पहली बार बहस हो रही है इस लोक सभा में और इसलिए अगर कुछ बुनियादी बातों की तरफ ध्यान देकर मंत्री महोदय और यह सरकार आगे से कुछ दिशा परिवर्तन करे तो बड़ा अच्छा होगा। कोई छोटी इधर उधर की बातों का मुझको जवाब नहीं चाहिए।

आखिर को इतिहास में जब गलती हो जाती है लिखने में, समझने में, तो उसके कितने भंयकर परिणाम होते हैं? आखिर इतिहास है क्या? यह है अतीत का बोध। जो कुछ पहले हो चुका है उसको किस ढंग से समझते हैं—अधूरा, पूरा, गलत, सही, इतिहास है अतीत का बोध। और अतीत का बोध भविष्य और वर्तमान का निर्माता भी हुआ करता है। अगर गलत समझते हैं तो गलत ढंग से वर्तमान और भविष्य बनता है और खास तौर से मैं एक छोटी सी मिसाल देकर बताता हूं। मन्दिर टूटे मध्यकालीन युग में। अब उसको इतिहास में लिखा जाता है अगर सिर्फ इतना ही लिख दिया जाये कि मुसलमान विजेताओं ने आकर मन्दिर तोड़े तो यह बात सही जरूर है, लेकिन अधूरी सही है, सिर्फ एक पहलू है। तो इतिहास एक गुस्सा भर बनकर रह जाता है। लेकिन अगर उसके साथ-साथ यह भी रखा जाय जो आधे सच को थोड़ा बहुत पूरा बनाता है कि उस

* लोक सभा वाद-विवाद, 26 मार्च 1966

वक्त के हमारे पुरखे कितने नालायक थे कि वह परदेशी आक्रमणकारियों को रोक नहीं पाये तो इतिहास किसी हद तक पूरा बन जाता है और फिर इतिहास एक दर्द के रूप में आ जाता है और वह दर्द ऐसा होता है कि हम फैसला करते हैं कि आगे कभी ऐसी बात होने नहीं देंगे और यह नहीं सोचते कि आज जो हमारे बीच में बसने वाले मुसलमान हैं, आखिर तो वह हमारे भूतपूर्व हिन्दू हैं, उनका कोई हाथ नहीं था उस वाक्ये में, उनसे बदला न निकालकर के जो कि एक बिल्कुल अहमक काम होगा हम यह कोशिश करते हैं कि इतिहास को गुस्से के रूप में न देखें बल्कि दर्द के रूप में देखें।

अब इस सिलसिले में किताब में जो भूल हुई है, देखने में मुमकिन है छोटी लगे पर मैं आपको बताऊं कि भारत के इतिहास की गैर-समझ अपने खुद के लेखकों और परदेशी लेखकों की कितनी होती है, कुछ मिसालें देकर बताता हूं, एक तो यहां पर जो कुछ होता है वह कहीं किसी की नक्ल है, चीन की नक्ल, मिश्र की नक्ल या उर और चाल्डी की नक्ल, नक्ल वह जरूर होनी चाहिए। नतीजा होता है कि इस संयुक्त राष्ट्र के छपे इतिहास के लेखक लेनर्ड वूली साहब कहते हैं कि जब हम सांची के महान स्तूप के उत्तरी दरवाजे जैसे ढांचे देखते हैं तो यह मुश्किल हो जाता है न सोचना कि इसकी प्रेरणा चीन के लकड़ी के स्थापत्य कला से आयी है। अब इस पर मैं आपको अध्यक्ष महोदय, एक बड़ी मजेदार बात बताऊं कि भारत के किसी इतिहास कमीशन के मेम्बर ने नहीं, सदस्य ने नहीं जिनकी जिम्मेदारी है ऐसी गलतियों को दूर करने की, डाक्टर राधाकृष्णन् या उनके जैसे किसी आदमी ने नहीं, बल्कि एक रूसी विद्वान प्रोफेसर डीयकनाफ आरईलिन ने इस गलती की तरफ ध्यान खींचा। और तब लेनर्ड वूली साहब एक छोटे से नोट में लिखते हैं कि जहां तक चीनी संबंध का तालुक है प्रोफेसर ईलन ने यह बात दिखाई जरूर, पर फिर भी मुझे यह कहना पड़ता है कि मेरे दिमाग पर यह असर पड़ा है, इसके लिए सबूत कुछ नहीं लेकिन यह असर देखा है कि किताब में लिखने लायक है। अब यह है इनका इतिहास। सांची में स्तूप बनता है, उसकी प्रेरणा चीन से आती है, संयुक्त राष्ट्र के इस इतिहास में, उस पर रूसी विद्वान प्रोफेसर ईलन इस गलती को बताता है। उसके ऊपर यह विद्वान प्रोफेसर वूली लिखते हैं कि मेरे दिमाग पर असर है, लिखने लायक है चाहे उसके लिए सबूत न हों..... दिमाग खराब तो डाक्टर सिंह आप कहते हैं, लेकिन इतिहास लिखने वाले क्या विदेशी क्या देशी ऐसे ही खराब दिमाग के हैं। नतीजा यह होता है कि आज भारत के बच्चे-बच्चे के दिमाग में यह परिभाषा है कि भारत में जो कुछ हुआ उसका कहीं न कहीं असर या उसकी प्रेरणा किसी दूसरी जगह से आयी है। यहां तक कि ये लोग इतने आगे चले जाते हैं कि इस पुस्तक में एक और पुस्तक का नाम लिया गया है और जिस का कि नाम सुन कर ही आप हंसेंगे, अचरज करोगे और दर्द भी आयेगा। इस पुस्तक का नाम है "पाकिस्तान के 5000 वर्ष"।

.....यह जितने पाश्चात् लेखक हैं वह चाहते हैं कि पाकिस्तान को पुरानेपने का एक मुलम्मा दे दिया जाय। वह इलाका हड़प्पा और मोहनजदारो का जो एक सभ्यता का पुराने सभ्यता के एक अंग का प्रकाश था उस को पाकिस्तान का नाम देकर के पाकिस्तान की जड़ें मजबूत की जायें यह है उनका मतलब। चाहे वह उस को कला कहें, इतिहास कहें चाहे और कुछ कहें। तो फिर ऐसे इंगलिस्तान की 20 लाख वर्ष का इतिहास ले लिया जाय। इंगलिस्तान का 20 लाख वर्ष का और हिन्दुस्तान का भी लिख दिया जाय 3 अरब वर्ष का क्योंकि वह पृथ्वी का इतिहास है। आखिर को यह भी पृथ्वी का एक अंश है। लेकिन आप जानते हैं उस के नतीजे कितने खतरनाक होंगे?

उस तरीके से इस किताब में एक और बात कही गई है जिस पर साम्प्रदायिक लोगों का ध्यान नहीं गया है। एक तरीके से अच्छा ही है और वह ऋगवेद के बारे में है। ऋगवेद कितना पुराना है इस तफसील में मैं नहीं पड़ता हालांकि मैं इस बात को जानता हूं कि आज से समझो 1900 और 1200 मसीह से पहले अर्थात आज से 3100 वर्ष पहले हिन्दुस्तान में कविता कोई खास नहीं थी यह बात मैं मानने के लिये तैयार नहीं हूं। इस में मिश्र की कविता का जिक्र है चीन की कविता का जिक्र है। जहां तक संगीत का सवाल है संगीत के मामले में मैं माने लेता हूं। इस किताब में सभी चीजों का मिलाजुला वर्णन है लेकिन कविता को ले कर के बिलकुल साफ इस किताब में लिख दिया गया कि 3100 वर्ष पहले की कविता को भारत के संबंध में हम लिख नहीं सकते क्योंकि उस के लिए कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं और जहां तक ऋगवेद का सवाल है यह हजरत फरमाते हैं कि आज से ईसा मसीह के 1500 वर्ष पहले आर्य लोग यहां आये। एक तो यह आर्य, अनार्य, द्रविड़, मंगोल, बहुत हद तक गप्प है। चागला साहब मुझे जवाब मत देना शुरू कर देना बिना इस बात को समझे हुए। उन को भी दोष नहीं दूंगा। यह एक परम्परा चली आ रही है। यह समझना कि आज से कोई 3500 वर्ष पहले आर्य लोग यहां आये और उस के 500—700 वर्ष में यह सब कविता वगैरह बनाने में लगे तब जाकर ऋगवेद को यह शख्स कहते हैं कि ऋगवेद की जमी हुई, मंजी हुई कविता कोई आज से 2700 या 2800 वर्ष पहले कही जायेगी।

..... आप मेहरबानी कर के चागला साहब को यह बतला दें कि उनकी जिम्मेदारी और डा० राधाकृष्णन् जिस इतिहास के साथ संबंद्ध रखते हैं उन की जिम्मेदारी से यह किताब छपी है जिस किताब में कि ऋगवेद की कविता को जगह नहीं दी गई क्योंकि उस कविता को वह मानते ही नहीं कि इतनी पुरानी है। वह नई है और उस के लिए उन्होंने बहुत तरह के तर्क भी दिये हैं। मैं खाली एक बात को लेना चाहता हूं और बातों में मैं नहीं जाना चाहता। कविता पुरानी है उसी का प्रमाण अलग से है लेकिन इस संबंध में

मैंने कौशम्बी की खुदाई करने वाले अध्यापक गोवर्धन राय शर्मा को बहुत खोद खाद करके खोजखाज करके एक लेख लिखने के लिए कहा है। उन्होंने मेरे पास यह भेजा है। उस में कई हिस्से हैं। बहुत तो तकनीकी हैं। उनका एक वाक्य खाली पढ़ कर मैं आप को सुनाता हूं। एक तरीका निकला है रेडियो कारबन। रेडियो कारबन का तरीका ऐसा है जिससे पुरानी चीजों की उम्र पता चल जाया करती है। वह कहते हैं कि जब कौशम्बी रपट छपी थी उस के बाद से रेडियो कारबन निकाला है और वह तरीका जब इन सब पर इस्तेमाल किया गया जो कि कुम्हारी के बर्तन वगैरह होते हैं, कौशम्बी में मिले हैं तो दावे के साथ कहा जा सकता है कि यह बर्तन कुम्हारी के 2035 ईसा मसीह से पहले से लेकर 640 ईसा मसीह तक के हैं। अब कौशम्बी या उसी की तरह और जितनी खुदाई और खोज हुई है उन के ऊपर विदेशी लोगों का तो कोई असर उन के दिमागों पर पड़ा नहीं। खुद अपने यहां के इतिहासकार उस को ज्यादा महत्व नहीं देते तो अगर आप चाहें तो यह नोट मैं आप को भेज देता हूं और इसको सदन पटल पर रख दिया जाय। शायद इस की मदद से भारत सरकार यूनाइटेड नेशंस से भी कोई बातचीत कर सके।

अब असल मामला यह है कि इस इतिहास वगैरह में वैसे भी एक चीज बहुत ज्यादा दिमाग में रहती है और वह यह कि जो कुछ भारत में हुआ वह किसी परदेशी समूह के आने से हुआ। यहां की जो बस्ती थी वह इस लायक नहीं थी कि कोई नई चीज हासिल कर ले। हमेशा कोई बाहर की बस्ती आई जिसने यह कहा। उस के लिए इस किताब में लिखा गया है कि हरप्पा में जो बड़ा जबरदस्त किला है...

दो, चार मिनट दे दें तो यह बात पूरी हो जायेगी। मैं अब उसका मतलब बताने के बजाय अंग्रेजी में ही उसे पढ़े देता हूं। वे यह लिखते हैं।

"The elaborate fortification of the citadels would hardly have been necessary to protect the cities against raiding parties from the mountains of Baluchistan; more probably they were intended to overawe the countryside, the assumption being that the ruler and citizens were of an alien stock which had reduced their indigenous inhabitants to the status of serfs."

यह तो इतिहासकार लिखते हैं। मुझे ज्यादा कहने की जरूरत नहीं। इस संबंध में मैं रूस के इतिहासकारों की तारीफ करना चाहता हूं हालांकि वह अपने खुद के देश के जार

के बारे में बहुत खास अच्छे तरीके से नहीं करते हैं लेकिन मैं उन का नमस्कार करता हूं कि कम से कम पुराने इतिहास को लेकर भारत के संबंध में उन्होंने ज्यादा ज्ञान दिखाया है बनिस्बत अंग्रेजों के और उन के जैसे दूसरे पाश्चात्य इतिहासकारों के यह प्रोफेसर आई० एम० डाएकोनौफ और जी० एफ० इलयिन लिखते हैं:—

"Prof. I.M. Diakonoff and Prof. G.F. Ilyin note that no conclusive proof exists that the ruling class was of foreign origin. The citadels may have been similar to the baronial castles of Germany in the Middle Ages."

अब उस के ऊपर सर लैनर्ड वूली साहब लिखते हैं कि दो सबब हैं जिससे यह साबित हो जाता है कि यह किला परदेसियों ने बनाया। किले के अन्दर जो लोग रहते थे वह परदेशी थे। एक तो नई सभ्यता आई और दूसरे यह कि पुरानी सभ्यता के ध्वंसावशेष बहुत मिलते हैं। मैं यह कहना चाहता हूं कि अगर इसी तरीके से जर्मनी, रूस और इंगलिस्तान में खोज की जाये तो यह पता चलेगा कि एक ही सभ्यता कई अंशों में आपस में लड़ाइयों के ध्वंसावशेष मिल जायेंगे उन के साथ ही अन्तःप्रेरणा से नई सभ्यता बनती है यह इतिहासकार कभी मानने को तैयार नहीं होते कि हिन्दुस्तान में कोई अन्तःकरण से प्रेरणा आती है जिससे नयापन हो जाता है। इस संबंध में मैं आप से कहना चाहता हूं कि इन्हीं जैसे इतिहासकारों ने भारत की सभी इतिहास विद्या को बिल्कुल नष्ट कर दिया है क्योंकि यहां का इतिहासकार बड़ा से बड़ा अब तक जो चल रहा है वह इस बात को मान कर चलता है कि अगर यहां पर पुनर्जीवन होता है तो कोई न कोई परदेशी के शारीरिक सम्पर्क से पुनर्जीवन होता है किसी अफगान से होता है किसी मुगल से होता है किसी अंग्रेज से होता है और नतीजा होता है कि आजकल वक्ताओं में यह भी देखा गया है बार बार कहने की प्रवत्ति आ गई है कि हमारा अनोखा देश है यह सब को खपा लिया करता है। सब के साथ समन्वय कर लिया करता है। हमारा तो विविधता में एकता वाला देश है। आज आप महानुभाव लोगों से मैं यह कहना चाहता हूं कि इस इतिहास की जहरीली धारा ने हमारे दिमाग को कुछ ऐसा बना डाला है कि वर्तमान राजनीति में लगा हुआ हिन्दुस्तान सोचता है कि हम तो प्रगतिशील हैं, आने दो किसी बाहर वाले को। जीत लेगा तो हमारा क्या बिगड़ेगा एक दफा जीत लेगा और बाद में हमारे अन्दर जो एक बहुत जबरदस्त सांस्कृतिक अमृत है उस के सबब से हम उसको सांस्कृतिक रूप से जीत लेंगे, अपने में खपा लेंगे। अपने में यह खपा लेने की बात के सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि यह इतिहास की धारा बिलकुल खत्म होनी चाहिये। समन्वय दो तरह का होता है।

एक दास का समन्वय और एक स्वामी का समन्वय। पिछले हजार वर्ष के इतिहास से हिन्दुस्तान ने स्वामी का समन्वय नहीं सीखा वह एक दास का समन्वय रहा है।

इस सम्बन्ध में मैं खाली परदेशियों को ही दोष नहीं देता हूं। उन के सबब से जितने भी इतिहासकार हैं, वे उसी जहर में बिल्कुल घुल जाते हैं। आज भारत में दो इतिहास के स्कूल हैं, एक डा० तारा चंद का और एक डा० मजुमदार का और ये दोनों के दोनों इसी समन्वय धारा के हैं, विविधता धारा के हैं। भारत क्या है, उसको भूल कर भारत के जो विभिन्न अंग हैं, उन की तरफ निगाह चली जाती है।

जहां तक इस बात का ताल्लुक है कि नई सभ्यता कहां से आई, हमेशा हमारा पुनर्जीवन होता है। कभी राजा राममोहन राय पुनर्जीवन करते हैं, कभी मानसिंह और अब्बुल फ़ज़ल पुनर्जीवन करते हैं, कभी उसके पहले गज़नी और गौरी पुनर्जीवन करते हैं। लेकिन यह पुनर्जीवन अगले आने वाले परदेशियों के सामने कभी टिक नहीं पाता है। इसलिये मैं आप से निवेदन करूंगा कि इतिहास के इस विषय के ऊपर इस सरकार को गम्भीरता से सोच विचार करना चाहिए। इस बारे में लोक सभा में आधे घंटे की बहस हो रही है। यह तो ऐसा विषय है जिस पर दो तीन दिन की बहस होनी चाहिये, क्योंकि यह मिज़ो का मामला है, यह नागा का मामला है, यह काश्मीर का मामला है।

.....आज जितनी भी बाते चल रही हैं—मिज़ो, नागा, काश्मीर, या उसके आदिवासियों के मामले उनके पीछे वही इतिहास का ज़हर है: संस्कृतियों को लड़ाना, आर्य, अनार्य, मंगोल, द्रविड़ की खिचड़ी पकाना, कहना कि पहले ये थे। इस के लिए कोई सबूत नहीं है। खाली एक छोटी सी भाषा की गवाही पर यह सब इमारत खड़ी की गई है। आप देख रहे हैं कि क्या क्या नतीजा निकलता है। सारी दुनिया की तरफ़ से खड़ी की गई जमात, युनाइटिड नेशन्ज, संयुक्त राष्ट्र, की तरफ से यह इतिहास की किताब निकलती है। मैं चागला साहब से निवेदन करना चाहता हूं कि वह मुझे जवाब देने की कोशिश न करें।

मैं पहले से उनको कह देता हूं ताकि उन को याद रहे। मुझे अपने लिए जवाब नहीं चाहिये। मैं चाहता हूं कि इतिहास और गणित, इन दो के मामले में वह कुछ करें। इन्हीं दो के ऊपर आज का भारत बनेगा या बिगड़ेगा। इतिहास अतीत का बोध है। अगर हमने अपने भूत को ठीक से जाना और पहचाना नहीं और अपने बच्चों को ठीक से सिखाया नहीं, तो यह देश कभी भी एक अच्छा और सुखी नहीं हो सकता है। गणित विज्ञान का आधार है, जो कि आज लोगों को—लोगों से मेरा मतलब रूस और अमरीका से है—चन्द्रमा पर ले जाता है। हमारे विश्वविद्यालयों में इतिहास और गणित, ये दोनों, बिल्कुल मरे हुए पड़े हैं। उनको सुधारने की कुछ कोशिश की जाये, इतना ही मुझे कहना है।

# 12
# पंजाब राज्य का पुनर्गठन*

मुझे कल और आज ऐसी इत्तिला मिली है, जो मैं इस माननीय सदन को देना चाहता हूं और जिस से हर भारत वासी को गुस्सा आयेगा और उस के रोंगटे खड़े हो जायेंगे। इस माननीय सदन ने कई बार तेलगू सूबे, पंजाबी सूबे, मराठी और गुजराती सूबे पर बहस की है, लेकिन भारत देश की कुल कितनी ज़मीन है, जिस में ये सारे सूबे बनते हैं, उस पर बहस नहीं हुई है। यह बात सही है कि पाकिस्तान और चीन को लेकर कुछ एकड़ या मील ज़मीन इधर-उधर हो गई, लेकिन अब वक्त आ गया है कि यह माननीय सदन भारत की कुल ज़मीन के बारे में सावधानी के साथ बातचीत करे। इसी सम्बन्ध में मैं आपको अध्यक्ष महोदय, संयुक्त राष्ट्र की 1950 की सालाना किताब से पढ़ कर सुनाता हूं यह यूनाइटेड नेशन्ज़ की 1950 की ईयर बुक है, जिसके सफा 1010 पर दिया है—

कि भारत का कुल क्षेत्रफल 31,62,454 वर्ग किलोमीटर है अब मैं उसी संयुक्त राष्ट्र की 1964 की सालाना किताब से पढ़कर सुनाता हूं, यानि 14 वर्ष बाद 1964 की किताब के सफा 579 पर भारत का क्षेत्रफल 30 लाख 46 हज़ार 232 किलोमीटर बताया गया है। अब ये दोनों उसी संस्था की किताबें हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय है, जिसका सदस्य भारत है और अगर दोनों क्षेत्रफल की तुलना करके घटाया जाय तो 1 लाख 22 हजार 222 वर्ग किलोमीटर ज़मीन भारत की गायब हो गई है।

मुझे बड़ा अफसोस हो रहा है कि कोई माननीय सदस्य यह कह सकते हैं कि इससे क्या ताल्लुक है। पंजाबी सूबा इसी ज़मीन से बनता है और कहां से बनता है, बड़े शर्म की बात है।

.....लेकिन आप मेहरबानी कर के सोचें कि ये जितने आंकड़े यूनाइटेड नेशन्ज़ को दिये जाते हैं, ये कौन देता है। ये भारत सरकार दिया करती है और चूंकि भारत सरकार उसकी सदस्य है, अगर भारत के क्षेत्रफल के बारे में इतनी बड़ी गलती हुई है तो क्या सदस्य राष्ट्र को इसके बारे में कुछ कहना नहीं चाहिए? 1 लाख 22 हजार वर्ग किलोमीटर कम हो गया, कहां चला गया? अगर इस ज़मीन का चीन और पाकिस्तान से सम्बन्ध है

*लोक सभा, वाद-विवाद, 26 अप्रैल 1966

तो मैं बताना चाहता हूं, अगर यह उनके कब्जे में चली गई है तो भी इस क्षेत्रफल को घटाया नहीं जा सकता।

इतना ही नहीं, यह तो संयुक्त राष्ट्र की किताब में दिया गया है, मैं आपको एक और खतरनाक बात बतलाना चाहता हूं, जो कि भारत सरकार की अपनी खुद की छपी हुई पुस्तक है और वह है सर्वे आफ इण्डिया। जिसमें सन् 1953 में 12 लाख 69 हजार 640 वर्ग मील हमारा क्षेत्रफल था। और 1964 में घट कर वह 12 लाख 61 हजार 597 वर्ग मील रह गया। भारत सरकार की तरफ से छपी हुई पुस्तक सर्वे आफ इण्डिया में 8,043 वर्गमील ज़मीन गायब हो गई। ज़मीन कहां चली गई?

अगर किसी देश में ऐसा काम हो, जहां की जनता शक्तिशाली हो, तो वह सरकार एक मिनट के लिए भी नहीं ठहर सकती। इतना बड़ा कुकर्म करने के बाद, इतनी बड़ी नालायकी करने के बाद कोई सरकार एक मिनट ठहर नहीं सकती। जब माननीय सदन पंजाबी सूबे वगैरह की बात करता है तो उसको ध्यान देना चाहिए कि भारत देश का क्या हाल यह सरकार करती चली जा रही है।

सूबों के हिसाब से देखते हैं तो पिछले 14-15 सालों में मराठी सूबा, गुजराती सूबा, पंजाबी सूबा, न जाने कितने सूबे बने, किस लिये? भाषा की उन्नति के लिए। तो मैं उन से साफ़ बात कहना चाहता हूं कि किसी भी सूबे में अंग्रज़ी की तुलना में सूबे की भाषा की तरक्की नहीं हुई है। मराठी अंग्रेज़ी की तुलना में कुछ भी आगे नहीं बढ़ी है। औरंगाबाद में मराठी थी, लेकिन आज अंग्रेज़ी हो गई है, और दूसरे सूबों की भी यही हालत है। इसी के साथ साथ अगर उन्नति की भी कसौटी पर आप रखना चाहते हैं तो इन सूबों में उन्नति के मामले में, खेती और कारखानों के मामले में कोई ऐसा फर्क नहीं पड़ा है कि ये भाषावार प्राप्त प्रान्त सचमुच भाषावार प्रान्त बने हैं, क्योंकि भाषावार प्रान्तों के नाम पर वहां अंग्रेजी अभी तक कायम है।

इस के साथ साथ मैं इस सरकार की एक और महान असफलता की तरफ ध्यान दिलाना चाहता हूं। ये सूबे अगर बनाने की बात थी तो एक चोट में जितने उचित सूबे थे, सब बना देने चाहिए थे। सन् 1948-49 में ही बना देने चाहिए थे, महाराष्ट्र बना देना चाहिए था, गुजरात, विदर्भ, जितने भी बनाने थे, सब बना देने चाहिए थे। लेकिन सन् 1948-49 में ये सूबे नहीं बनाये गये और मामले को टाल दिया गया। पिछले 15 साल में भारतीय जनता के दिमाग के अन्दर इस कीड़े को उकसाया गया है और मैं इस सरकार पर आरोप लगाता हूं कि इस ने उकसाया है, क्योंकि सरकार ने इस मसले को टाल कर इसी पर लोगों का ध्यान केन्द्रित रखा।

एक सवाल यह आता है कि हम जो विरोधी दल हैं, उनका ध्यान भी उचित प्रश्नों की तरफ उतना ठीक नहीं जा पाता, जितना गलत प्रश्नों की तरफ चला जाता है। ये गलत प्रश्न या तो सरकार खुद उठाती है या कुछ हालात ऐसे पैदा हो जाते हैं कि जिनको सरकार के अलावा दूसरे लोग उठा दिया करते हैं। विरोधी दलों का मुख्य लक्ष्य यह होना चाहिए कि सवाल अच्छे उठाये जायें, गलत सवाल उठा दिये जाते हैं, चाहे जितना अच्छा जवाब दिया जाय, लेकिन उस से उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। मैं अपने विरोधी दलों को दोष देना चाहता हूं कि वे हर सवाल का जवाब देने के लिए उतारू हो जाया करते हैं, इसकी कोई जरूरत नहीं है। हमें उन सवालों का जवाब देने के बजाय और बातों पर जाना चाहिये, जैसे अंग्रेजी भाषा खत्म हो, उसकी तरफ जाना चाहिए, जिससे खेती और कारखानों में सुधार हो, उनको उस तरफ जाना चाहिए। नतीजा क्या होता है कि विरोधी पहले तो कहते हैं कि महाराष्ट्र बनाओ, कांग्रेस सरकार कहती है कि नहीं बनायेंगे, 4-6 वर्ष लड़ाई चलती है, गोली भी चलती है, बहुत ज्यादा तकलीफ उठाते हैं, और फिर बाद में धीरे से कांग्रेस सरकार महाराष्ट्र बना देती है और लोग खुश हो जाते हैं और फिर इससे कांग्रेस सरकार को कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिये ज्यादा अच्छा यही है कि अब तक जो हो गया, वह हो गया, विरोधी दल आइन्दा अनुचित सवालों पर अपना वक्त न खराब करें और मैं समझता हूं कि उन्हें उचित सवालों की तरफ जाना चाहिए।

.....अब जो मैंने बताया है, इस विषय को ऐसे ही नहीं छोड़ देना चाहिए, भारत के क्षेत्रफल के बारे में इस सत्र के खत्म होने से पहले तय करो, यह सत्र खत्म नहीं होना चाहिए जब तक कि यह जवाब न आजावे कि भारत की 1 लाख 22 हजार 222 वर्ग किलोमीटर ज़मीन कहां हड़प गई, कहां समुद्र में डुबो दी गई।

मैं जब विरोधी दलों से कह रहा था कि सही सवाल पूछो, जो सवाल सरकार की तरफ से या दूसरे जो अगड़म-बगड़म दलों की तरफ से पूछे जाते हैं, उनके जवाब देने की जरूरत नहीं है। अणु बम बने या न बने उसका जवाब हमें देने की क्या जरूरत पड़ी कोई सूबा बने या न बने इसका जवाब देने की हमें क्या जरूरत पड़ी? एक जगह मैं गया। दुर्ग रास्ते में पड़ता था। मुझ से वहां यह मांग की गई कि विदर्भ सूबा बने। फिर गांडवाना सूबा बने यह मांग की गई। झारखण्ड सूबा बने यह मांग की गई, हरियाणा बने यह मांग की गई। अगर इस तरह की सब मांगों पर विरोधी दल वाले उलझ जायें तो इस में दो चार पांच बरस का और वक्त बरबाद हो जायेगा और बरबाद होने पर हम फिर जहां थे वहां पहुंच जायेंगे। इस वास्ते यह जरूरी है कि विरोधी दल इस मामले पर सम्यक नीति बनायें। खास तौर पर जो मैंने सवाल उठाये हैं उन पर वे ध्यान दें। एक सवाल तो मैंने यह उठाया है कि सही सवाल पुछवायें। गलत सवाल पुछवाये जाते हैं तो

जवाब देने से इन्कार करो। दूसरी बात यह है कि भारत के कुल क्षेत्रफल के बारे में जरूर इस सरकार से कोई सफाई लेनी चाहिए। यह कोई बड़ा भारी रहस्य है। इतना बड़ा यह रहस्य है कि ये लोग अब इस लायक नहीं रह गये कि उस गद्दी पर बैठें। ऐसा न हो कि यू० एन० के मामले में कोई जबर्दस्ती करने की जरूरत पड़े और सर्वे आफ इंडिया के मामले में कोई जबर्दस्ती करने की जरूरत पड़े।

13

# व्यक्तिगत मासिक व्यय की सीमा निर्धारित करने हेतु समिति की नियुक्ति के बारे में प्रस्ताव*

"यह सभा संकल्प करती है कि सरकार को व्यक्तिगत मासिक व्यय 1500 रुपये तक सीमित करने के हेतु प्रस्ताव तैयार करने के लिए एक समिति नियुक्त करनी चाहिये ताकि विकास कार्य में लगाने के लिए प्रति वर्ष एक हजार करोड़ रुपया उपलब्ध किया जा सके।"*....

तीन आना बनाम पन्द्रह आना वाली बहस पूर्वाघ थी, पहले की बहस थी, आज की बहस 1500 रु० महीने की सीमा लगाने वाली उत्तरार्द्ध की बहस है, रोग का निदान है। यह कहते वक्त एक बात मैं साफ कर दूं—रुपये का मूल्य बदलता रहता है। अगर मुझे 6 महीने पहले बोलना होता या साल भर पहले मैं एक हजार रुपया कहता और मैं यह दावा करता हूं कि मेरा सुझाव यदि लागू कर दिया जाय तो यही 1500 रु० एक महीने के अंदर-अंदर यानी सुझाव लागू होने के एक महीने के अंदर-अंदर दो हजार रुपया कम से कम हो जायेगा, यानी जो 100 रुपये है वह 125 हो जायगा। क्योंकि रुपये का मूल्य बदलता रहता है।

सब से पहले मैं एक प्रश्न उठाना चाहता हूं। माननीय सदस्य कई बार पूछ बैठते हैं, यह हो कैसे? बात तो बड़ी अच्छी है, तो मैं जड़ में जाना चाहता हूं। कैसे यह हो? हम बहुत तरह के टैक्स लगाते हैं। एक लाख रुपए में से 92 हजार रुपया आय-कर ले लेते हैं, फिर भी नहीं हो पाया, दौलत के ऊपर टैक्स लगा दिया, फिर भी नहीं हो पाया, यहां तक कि खर्चे पर भी टैक्स लगाया, फिर भी नहीं हो पाया। मैं उदाहरण के लिये, केवल उदाहरण के लिये एक बात कहना चाहता हूं—स्रोत पर जाओ, स्रोत कहां—जहां पर लोग खर्चा कर रहे हों, ऐसी तरकीबें निकालो कि उन विलासी खर्चों को रोक दिया जावे, जैसे कि मोटरवाली बात को लेता हूं। इस समय चार लाख निजी मोटरों का इस्तेमाल अपने देश में हो रहा है अगर मान लो कि एक मोटर पर औसतन 500 रु० महीने का

*लोक सभा, वाद-विवाद, 26 अप्रैल 1966

खर्चा रखा जाय, कुछ 200-300 वाली हैं, कुछ हजार दो हजार वाली हैं, अगर सब को लेकर औसतन 500 रु० रखा जाए, तो करीब 200 करोड़ रुपये की बचत हो जाती है। थोड़ी देर के लिये मान लें कि आखिर चलना-फिरना तो होगा ही बसों से या टैक्सियों से, या मान लीजिए किसी संस्था या सरकारी गाड़ियों में, तो भी 200 करोड़ रुपये की बचत इन निजी मोटरों के बंद कर देने से हो जायेगी, स्रोत के ऊपर इस तरह से पहुंचा जा सकता है।

असल में मैंने यह प्रश्न खाली इस लिये नहीं उठाया है कि हम को समाज के अंदर कोई न्याय कायम करना है। सब से बड़ी बात यह है कि जब हम अभाव को, कमी को, जब तक हम अपने यहां जो अभाव है, तंगी है, कमी है, सभी चीजों को चाहे वह अकाल के रूप में या चाहे मुफलसी के कारण है, जब तक अभाव की साझेदारी तंगी और कमी से अपने देश में कायम नहीं कर देंगे तब तक हम किस मुंह से जनता को कहेंगे कि तुम तकलीफ उठा कर इस देश को बनाओ। जो लोग इस देश का निर्माण करने वाले हैं, कानून बनाने वाले हैं, सरकार को चलाने वाले लोग हैं, यदि वे विलासिता में रहते हैं, ठाठ-बाट से रहते हैं, उन के मुंह में यह शक्ति नहीं है कि वह जनता को कह सकें कि तुम मन लगा कर और पेट काट कर के देश का निर्माण करो...

हमारा देश-समाज सरकार अभिमुख है, और सरकार अफसर अभिमुख्त है, यानी जनता सरकार की नौकर है और सरकार अफसरों की नौकर है। किसी हद तक मैं सही बात कर रहा हूं...

एक करोड़ के करीब सरकारी नौकर हैं, उन में से बहुत से ऐसे हैं जो कोई भी पैदावार बढ़ाने का काम नहीं करते, कलमघिस्सू लोग हैं, उपजाऊ लोग नहीं हैं और यह बिल्कुल निश्चित बात है कि जैसे और देशों में पार्किन्सन नाम का नियम लागू है—हमारे देश में कुटुम्ब के कारणवश, जाति के कारणवश, प्रदेश और भाषा के कारणवश लोग खाली जगहें समाज में और सरकार में बनाया करते हैं, इसलिये नहीं कि कोई जरूरत है, बल्कि खाली जगहों का निर्माण करो, जिस में अपने कुटुम्बियों, जातिवालों, भाषा वालों को भर सको। मेरा अनुमान है कि 30-40 लाख आदमी ऐसे हैं, जिन की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन फिर भी वह सरकारी काज काम में लगे हुए हैं, इस से कितनी फ़िजूलखर्ची होती है। इस का अंदाजा लगाना मुश्किल है। 30-40 लाख न सही, यदि हम 20 लाख को ही मान लें तो इन से 300 करोड़ रुपये की बचत हो जाती है।

जो आज भारत की छाती पर बैठे हुए मूंग दल रहे हैं यह 300 करोड़ रुपया बच सकता है लेकिन यह सरकार कुछ नहीं कर सकती, जब तक कि वे खुद अभाव और

तंगी को सहने के लिये तैयार नहीं हैं और दुनिया को दिखा नहीं देते हैं कि हम भी तुम्हारी तरह से तकलीफ उठा रहे हैं। मैं इन को बरखास्त करने की बात नहीं कह रहा हूं—मैं यह कह रहा हूं कि इन सरकारी नौकरों को कलम-घिसाऊ कामों से हटा कर उपजाऊ कामों में लगा दीजिये, जिस में कि वे देश की दौलत को बढ़ावा देने के काम में लग सकें। यह काम सरकार कर सकती है, जिस के लिये कि मैं ने यह बहस यहां पर उठाई है। आज क्या हो रहा है? एक तरह से यह सरकार चलती रह गई तो हमारा देश यादवस्थली बन जायगा। आज हर एक वर्ग महंगाई भत्ता मांग रहा है। बनर्जी साहब महंगाई भत्ते की मांग को बढ़ावा दे रहे हैं, मैं उन से कहना चाहता हूं कि वह सही कदम क्यों नही उठाते, ऊपर के लोग विलासिता में क्यों रहते हैं? मैं अगर मजदूर नेता होता, तो मैं महंगाई भत्ते का बात नहीं करता, मैं यह मांग करता कि बड़े लोगों के खर्चे घटाये जायें, ताकि चीजों के दाम घट सकें और हमारा समाज अच्छी तरह से चल सके।

बिरला, सरकारी नौकर जितने ये बड़े-बड़े लोग हैं, इन सब के खर्चे घटाये जायें, तभी जा कर हम अपने समाज को बना सकेंगे।

आप को मैंने रकमें बताई हैं, रकमों पर ज्यादा जोर मत देना, मैं तो बहुत डर-डर कर हजार करोड़ कह रहा हूं। लेकिन मेरा अंदाजा 1500 करोड़ रुपये का है। दो मंत्रियों ने यहां पर 25 करोड़ कहा है— एक तो श्री अशोक मेहता ने और दूसरे श्री मोरारजी देसाई ने। श्री अशोक मेहता के कभी ताजगी के दिन थे, पुष्प प्रफुल्लित हुआ था। मैं नहीं जानता श्री देसाई का फूल कब खिला था या नहीं खिला था, उन्होंने कोई निशानी नहीं छोड़ी, लेकिन श्री मेहता ने निशानियां छोड़ी हैं, और मैं एक निशानी पढ़ कर सुनाता हूं— वह यह है कि—

"In India, 0.14 per cent takes five per cent of the national income."

जिस का मतलब हो जाता है—सात लाख, यानी डेढ़ लाख परिवार कमाने वाले, 10 अरब रुपया पा जाते हैं आज की राष्ट्रीय आमदनी के हिसाब से। मैं यह मानता हूं कि उन्होंने जब यह किताब लिखी थी 1953 में तब से समानता और ज्यादा घटी है, असमानता बढ़ी है, 10 अरब रुपये से ज्यादा हो जायगी, लेकिन यदि 10 अरब ही मान लिया जाय और मेरा 1500 करोड़ रु० वाला नियम लागू कर दिया जाय, इन डेढ़ लाख कुटुम्बों पर, तो ढाई अरब रुपया खर्च होगा और 750 करोड़ रुपये की बचत हो जायेगी।

यह है श्री अशोक मेहता की ताजगी के जमाने की, जब उनकी कली खिली थी, उस जमाने की बात। अब यह पच्चीस करोड़ पर आ गए हैं। श्री मोरारजी देसाई की मुझे पता

नहीं है कि कली खिली थी। जरूर खिली होगी। लेकिन नमूना मेरे पास नहीं है, इसलिये मैं नहीं कह सकता हूं।

.....अभी कम से कम मैं राष्ट्रीय आमदनी के कुल वितरण में नहीं जाऊंगा क्योंकि किस्सा लंबा हो जायगा। खाली इतना समझिये कि अगर मेरा नियम लागू कर दिया जाए तो इस व्यापारियों के चेम्बर की किताब के अनुसार भी 57 करोड़ बचता है। मैं खाली कहे देता हूं कि कितने लोग हैं, इस के बारे में आप आय-कर के जो कमिश्नर हैं उनकी किताब के आंकड़े से मेरा जवाब देंगे तो वह बिल्कुल गैर-जरूरी, बेमतलब, असंगत जवाब होगा। उसका कुछ भी मतलब नहीं हो पाता है। इसलिए कि सब लोग आयकर देते नहीं हैं। कम देते हैं। 57 करोड़ का तीन गुना कम से कम करना चाहिये। लेकिन अगर दो गुना भी आप करो तो 114 करोड़ रुपया तो ऐसा है जो उद्योगी रकम है, आमदनी उसमें से बच जाएगी, खेती वगैरह का भी उतना शामिल कर लो तो तीन सौ करोड़ इन लोगों के हिसाब से बचता है। एक-एक जगह से अगर मैं हिसाब लगा कर बताऊं तो यह साबित कर सकता हूं कि कितना ज्यादा रुपया बचता है।

एक बार बहस हुई थी। नन्दा जी बैठे हुए हैं। इन्होंने एक बात को माना था। इनके उस वक्त के मुखिया के बारे में मैं कुछ नहीं कहूंगा। इन्होंने साढ़े सात आने माना था। मोटे तौर पर आठ आना सही। मैंने तीन आना कहा था। मैं अब चार आना बढ़ाये देता हूं। अगर उस तरह से देखा जाए तो औसत आमदनी जितनी है और जो साठ सैंकड़ा जनता को कम मिलता है श्री नन्दा के जब वह मंत्री थे कहने के अनुसार... तो 6000 करोड़ रुपया बच जाता है और मेरे हिसाब से नौ हजार करोड़ रुपया.....

.....यह हो सकता है कि जो मैंने छः हजार करोड़ रुपये की बचत बताई है वह सब की सब बड़े लोगों को न मिलती हो, मध्यम लोगों को मिल जाती हो। लेकिन उस हिसाब से हजार करोड़ रुपये का जो मैंने हिसाब रखा है वह गलत नहीं होता है।

एक बार यहां पर नोबल पुरस्कार विजेता श्री पाउलिंग आए थे। उन्होंने कहा था कि हिन्दुस्तान में हालत गिर रही है। उस पर बहुत ज्यादा हल्ला मचा था। सवाल जवाब हुए थे। जवाब ठीक तरह से लोग नहीं दे पाए थे। अगर सरकार के अपने नैशनल कंजम्पशन सर्वे राष्ट्रीय खपत सर्वेक्षण को देखा जाए तो उसके अनुसार जो नीचे के बीस सैंकड़ा लोग हैं, आबादी है उसके तरल पदार्थ यानी तेलों में और मीठी चीजों में कमी हुई है। यह सरकार ने खुद माना है।

हो सकता है कि मेरी बात पर कुछ लोग कहें कि तुम काम देश में कम करवा दोगे क्योंकि काम के अनुसार मजदूरी या मुनाफा मिलना चाहिये। इससे किसी को प्रेरणा नहीं

रहेगी। यदि प्रेरणा नहीं रहेगी तो कैसे काम चलेगा। ऐसे लोगों को मैं कहूंगा कि जब राजाजी बारह सौ एकड़ के मकान में रहते थे तब जितना वह काम करते थे मेरा अपना अनुमान है कि उम्र बढ़ जाने पर भी अब एक चौथाई एकड़ के मकान में रहते हुए उससे भी ज्यादा काम वह करते हैं। मैं चाहता हूं कि वह सौ बरस काम करते चले जायें। इस तरह से काम का मजदूरी और धन से ताल्लुक नहीं रहता है।

नौकरशाह और नगर सेठ के संबंध को आप जरूर जान लो। नौकरशाह अपने देश में ज्यादा हैं, नगर सेठ कम हैं। तीस लाख मान लो नौकरशाह बीस लाख मान लो नगर सेठ या बीस लाख दोनों मान लो तो बारह लाख नौकरशाह और आठ लाख नगर सेठ। ये जितने लोग हैं इन सबके बारे में कराची प्रस्ताव में जो गलती की गई है वह गलती अब हम लोगों को दोहरानी नहीं चाहिये। वह गलती यह है कि सरकारी नौकरों और मंत्रियों की तनख्वाह को तो बांध देना, कम कर देना, आदर्शमय बना देना और चारों तरफ उनके लालच का समुद्र बहा देना, सरकारी नौकरों और मंत्रियों को आदर्श के द्वीप में बैठा देना और नगर सेठों को लालच के समुद्र में बहते रहने देना। यह चीज असम्भव है। लालच के समुद्र में और सब जगह जब लगाम लगाओगे तभी जा कर सरकारी नौकर और मंत्री लोग अपने काम में ईमानदार बनेंगे और आदर्शवादी बनेंगे।

अब एक सवाल उठता है। कई लोग कहते हैं कि तुम खपत और खर्च के ऊपर क्यों जोर देते हो। राष्ट्रीयकरण की बात क्यों नहीं करते हो। ऐसे लोगों से मैं खाली इतना कहूंगा कि मेरा प्रस्ताव बहुत आगे जाता है। यह क्या चुटकुले लगाते हुए कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण करो इस प्रस्ताव के पास होने के बाद जो लोग समझते हैं कि उनको काम करने की प्रेरणा नहीं है उन सबका राष्ट्रीयकरण हो जाता है। अगर प्रेरणा लोग समझते हैं तो हम ऐसी बात भी सोच सकते हैं। मैंने सुना है कि संतान वगैरह के मामले में आदमी जरा कुछ बहुत ज्यादा आतुर रहता है और उसकी भावनायें रहती हैं। कुछ रुपया बीस बरस तक हम उनके नाम में जमा करते रह सकते हैं। इस का कारण यह है कि मैं जो कुछ कह रहा हूं। वह केवल बीस बरस के लिए कह रहा हूं। अपना देश जब भरपूर हो जाए उसके बाद जो आपको करना हो कर लो। ये पैसे आप चाहो तो उनको दे दो, उनकी सन्तानों को दे दो। लेकिन बीस बरस तक इस तरह से जैसा मैंने बताया है काम चलाओ।

कई बार लोग कहते हैं कि तुम्हारी अपनी क्या हालत है। मैं पहले से बता देता हूं कि यह विशेषाधिकार का समाज है। मेरी तनख्वाह पांच सौ रुपये मासिक है लेकिन सुविधाओं के हिसाब से देखा जाए तो जिस ढंग का मुझे मकान मिला हुआ है और जो सुविधायें हैं उन सबको जोड़ा जाए तो ढाई हजार रुपया माहवार तनख्वाह बैठती है। जहां

मैंने अपनी बात कही वहां मैं मंत्रियों की भी कह देना चाहता हूं उनको करीब सात हजार महीना मिलती है और वह साल की जा कर एक लाख के करीब पड़ती होगी। और ठाट-बाट के क्या कहने हैं! मैंने राष्ट्रपति भवन के बारे में एक बार कहा था कि खाली लिफ्ट बदलने के लिये चालिस लाख रुपया खर्च करने की योजना बनी थी जिसमें से पांच छः लाख रुपया खर्च भी हो गया।

कहने के लिए तो राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में से प्रत्येक पर दस, बीस, तीस लाख रुपया खर्च होता है लेकिन मैंने साबित कर दिया है कि उनमें से प्रत्येक पर कम से कम एक करोड़ रुपया साल का निजी खर्च होता होगा। इतने ठाट-बाट इतनी शानों-शौकत इतना ऐश्वर्य इतनी शौकीनी क्या हम लोग यूरोप और अमरीका की नकल करके अपने देश में पैदावार बढ़ाना चाहते हैं? अगर पहले हम बीस वर्ष तक पैदावार बढ़ा लें और उस के बाद उस ऐश्वर्य की नक्ल करें तो मुझे कोई एतराज नहीं होगा।

मैं खुद चाहता हूं कि मैं आराम से रहूं। एक रूसी से मेरी दोस्ती हो गई थी। शायद वह रूस की सी॰ आई॰ ए॰ वाला रहा हो। वह दिन में दो बार मेरे पास आने लग गया। यह ताशकंद से पहले की बात है। अब तो उन की शक्ल दिखाई नहीं पड़ती है। उन्होंने मुझे कहा कि तुम अपने घर में वातानुकूलित करने वाली ठंड करने वाली मशीन क्यों नहीं लगा लेते; तुम इस तरह काम कैसे कर सकते हो; मजदूरों का भला कैसे करोगे। मैंने कहा कि पहले मुझे अपने देश को तुम्हारे रूस जैसा एक आधुनिक पैदावार वाला देश बनाने दो फिर वातानुकूलित करने वाली मशीन की बात करना।

मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि मैंने अपने प्रस्ताव में यह नहीं कहा है कि लोग अपनी चीजों को छोड़ दें। वह तो धर्म के लोग करते हैं। धर्म के लोग एक तो प्रेरणा पर काम करते हैं और दूसरे सन्तई पर काम करते हैं। राजनीति के लोगों का काम प्रेरणा पर चलता है और दूसरे विधि और कानून पर चलता है। हम लोग यहां पर कोई सन्तई करने नहीं आए हैं हम लोग विधि और कानून बनाने आए हैं ताकि करोड़ों के लिए कोई काम किया जा सके न सिर्फ एक दो चार आदमी सन्त बन कर उदाहरण रख दें और लोग कहें कि कितने अच्छे और बढ़िया आदमी हैं।

इसी लिए मैं आप को एक बड़ा भंडार बताना चाहता हूं और वह है सिंचाई वाला भंडार। मैंने एक मोटा सा हिसाब लगाया है कि पूरी खेती के लिए सिंचाई की व्यवस्था करने के लिए 40 अरब से 1 खरब रुपये की जरूरत पड़ेगी एक खरब रुपये यानी दस हजार करोड़ रुपये। मैं समझता हूं कि इतना ज्यादा सिंचाई का काम करना असम्भव है जब तक हम स्वयं सेवकी को न शामिल कर लें और वह स्वयंसेवकी भी असम्भव है

जब तक हम सारी जनता के सामने यह आदर्श न रख दें कि हम ने इस देश में अभाव की साझेदारी करनी शुरू कर दी है।

कुछ लोग यह सवाल उठायेंगे कि क्या मैं निजी धंधे और सार्वजनिक धंधे जैसे बड़े विषय के बारे में कुछ नहीं करुंगा। मैंने तो बुनियादी बात कह दी है। मैं आप से बड़ी गम्भीरता के साथ कहना चाहता हूं कि अगर इस देश को चलाने वाले लोग चाहे व निजी धंधे वाले हों और चाहे सार्वजनिक धंधे वाले इतने नादान हों कि वे कहें कि चलो कोई बात नहीं है हम अपने कारखानों का माल हिन्देशिया भेजेंगे, बर्मा भेजेंगे या और कहीं भेजेंगे और उन से चावल और गेहूं मंगायेंगे—यह बात केवल सार्वजनिक धंधे वाले ही नहीं कह सकते हैं निजी धंधे वाले भी कह सकते हैं—तो यह वही गलती होगी जो कि इस देश में पिछले बीस बरस से हो रही है यानी नाईलोन, रेयन, टेरीलीन वग़ैरह के न जाने कितने वाहियात किस्म के कारखाने तो बन गए और सिंचाई का काम नहीं हो पाया।

जो लोग कहते हैं कि उपभोक्ता पर छोड़ दो खुला धंधा छोड़ दो मैं उन्हें कहूंगा कि ऐसा करने का नतीजा आज हम देख ही रहे हैं। और जो लोग कहते हैं कि सार्वजनिक धंधे बनाए जायें मैं उन्हें कहूंगा कि राउरकेला और जमशेदपुर में आज कोई फर्क नहीं है। जिस तरह से लूट जमशेदपुर में है उसी तरह लूट राउरकेला में भी है क्योंकि वहां पर उसी तरह की अफसरशाही ही नौकरशाही और मज़दूरों का शोषण है और मैं तो यहां तक कहूंगा कि शायद कुछ ज्यादा है, क्योंकि वहां पर अपनी जाति और अपने कुटुम्ब के लोगों को भरने का काम चलता आ रहा है।

असल में यह मामला सम्पत्ति का है। सम्पत्ति का मोह और सम्पत्ति की संस्था, मैं समझता हूं कि संसार में अभी तक किसी व्यक्ति ने, किसी समाज ने, किसी देश में एक-साथ इन दोनों का हल नहीं निकाला है। मार्क्स साहब ने सम्पत्ति की संस्था का हल निकाला था। हमारे उपनिषदों ने सम्पत्ति के मोह का हल निकाला था। इसी तरह से हम कोई ऐसा रास्ता निकालें कि सम्पत्ति के मोह और सम्पत्ति की संस्था, इन दोनों का हल निकाल सकें, भोग की इच्छा और भोग की व्यवस्था, दोनों का हल निकाल सकें। मैंने यही बात यहां पर रखी है कि किसी तरह से भोग की व्यवस्था पर रुकावट लगाई जाये, भोग की इच्छा पर रुकावट लगाई जाये।

मैंने अपने मोटर का उदाहरण दिया है। मैं अब स्कूल का उदाहरण देता हूं। हमारे देश में पांच दस लाख बच्चे ऐसे हैं, जो बढ़िया स्कूलों में जाते हैं, जो बीस तीस पचास, अस्सी, सौ रुपये महीना की फीस देते हैं—खाली फीस, बस वाली फीस, स्कूल वाली फीस, कपड़े और खाना नहीं। अगर उस खर्च को रोक दिया जाये और ऐसे, स्कूल हो

जायें, जिनमें राष्ट्रपति का बच्चा और भंगी का बच्चा दोनों एकसाथ पढ़ने जायें, तो इससे भी कम से कम साठ करोड़ रुपये से एक अरब रुपये की बचत हो जायेगी।

अन्त में मैं यही निवेदन करूंगा कि जो बातें मैंने कही हैं, सभी माननीय सदस्य इस विषय पर बोलते हुए उन पर ध्यान दें। मैं सम्पत्ति के मोह, भोग की इच्छा, सम्पत्ति की संस्था और भोग की व्यवस्था दोनों के बारे में कह रहा हूं। मैं अपने देश के लिए एक ऐसा रास्ता निकाल रहा हूं जिस पर अभी तक लोगों ने नहीं सोचा है। माननीय सदस्य उस पर गम्भीरता से सोचें और देश का निर्माण करें।

मुझे खुशी है कि तीन हफ्ते में वित्त मंत्री जी पच्चीस करोड़ से पच्चास करोड़ तक पहुंचे। जब पहले बोले थे तब कहा था कि सिर्फ पच्चीस करोड़ बचेंगे। आज बोले तो कहते हैं कि पचास साठ करोड़ बचेंगे। इस रफ्तार से चलते रहे तो छः महीने में मेरी जगह पर पहुंच जायेंगे।

अब कभी गर्दन आपकी पकड़ में आ जाए तो चिल्लाया कम करो। गर्दन पकड़ी गई है इस वक्त थोड़ी सी आपकी। इस लिए मैं बता रहा हूं कि पचास करोड़ पर आज आप पहुंचे हैं और सोमवार को जब आपकी और हमारी बात होगी तो शायद तीन सौ करोड़ तक पहुंच जाओगे मैं हजार डेढ़ हजार करोड़ कहना चाहता हूं। मैं सब आंकड़े दे चुका हूं। अब मैं ज्यादा वक्त खराब करना नहीं चाहता हूं।

मैं खाली एक बात कहना चाहता हूं। यह बात मैं राममूर्ति जी को और शर्मा जी को कहना चाहता हूं। मैंने जानबूझ कर खर्चा कम करने को कहा है। इसलिए कहा है कि बहुत से नौकरशाह और मंत्री लोग तनख्वाह पाते हैं तीन हजार चार हजार रुपया महीने की लेकिन सुविधायें उनकी होती हैं दस हजार, पचास हजार, अस्सी हजार और एक लाख रुपये की। आप अच्छी तरह से समझ लो कि जब मैं खर्चा कहता हूं तो मेरा मतलब तनख्वाह और सुविधाओं दोनों से है। हमारा भारत सुविधाओं का देश है। संसार में सर्वश्रेष्ठ सुविधाओं का देश है। मैंने अपनी सुविधायें खुद गिनाई हैं। मैं जानता हूं कि सुविधायें आसानी से नहीं छोड़ी जा सकती हैं। विधि और कानून पास हो जाएगा तो ये सुविधायें हम सब को छोड़नी पड़ेंगी। इसीलिए खर्चे के मामले में बात साफ हो जानी चाहिये। मेरा मतलब सुविधाओं से है तनख्वाह से है। और जिन लोगों ने यहां पर कहा है कि आमदनी के ऊपर अंकुश तो बिल्कुल साफ बात है कि जो पन्द्रह सौ रुपये मिलना है वह कुटुम्ब पीछे मिलेगा व्यक्ति के पीछे नहीं। यह राशि कुटुम्ब के पीछे खर्च करने को मिलेगी। इससे कोई तिजौरियां नहीं भरती जायेंगी। मैंने पहले ही भाषण में कह दिया था कि ज्यादा से ज्यादा सन्तान वगैरह की प्रेरणा के लिए एक आदमी को पांच सौ रुपया या

हजार रुपया महीना दे दिया करो तो अलग बात है। इसका साफ मतलब होता है कि आमदनी करके अप्रत्यक्ष रूप से अपने पास रखने की इस प्रस्ताव में कोई गुंजाइश नहीं है।

हमारे कम्यूनिस्ट भाई समझने में गलती न करें? मैं एक बात साफ कह देना चाहता हूं कि मैं उस राष्ट्रीयकरण को नहीं चाहता हूं जिस के अन्दर अफसर लोग तीन हजार, दो हजार या एक हजार तनख्वाह लें लेकिन पचास हजार की सुविधायें लें। अब राष्ट्रीयकरण जिन कारखानों का हो गया है वे निजी कारखानों की तरह से ही चलते हैं। इसलिए मैंने यहां पर खर्च शब्द का प्रयोग किया है।

सोमानी जी ने अपने विचार यहां पर आज रखे हैं। आप जानते हैं कि मैं बहुत अपने ऊपर संयम रखता हूं। मिंक कोट और हीरों वगैरह की चर्चा हुई है। मैं बिल्कुल साफ बात आपके सामने रखना चाहता हूं। नौकरशाहों में और नगर सेठों में तो सदा सर्वदा का सदियों का शताब्दियों का सम्बन्ध चलता आया है। इसलिए उनको यह बात क्यों नहीं अखरेगी। बड़ी अखरेगी।

मैंने प्रेरणा की बात भी सुनी है। मुझ को गुस्सा साधारण तौर पर नहीं आता है। लेकिन मैं इसका उत्तर देना चाहता हूं। मोरारजी भाई ने अभी बताया है कि एक लाख आदमी। मान लो बीस लाख आदमी हैं, मेरे पंद्रह सौ के हिसाब से। मैं आज बहुत ही ठंडे दिल से कहना चाहता हूं कि अगर ये बीस लाख आदमी बिल्कुल खत्म हो जाएं, संसार में न रहें, उनकी प्रेरणा से भारत को कोई लाभ न मिले तो भारत कहीं ज्यादा अच्छा हो जाएगा। इन आदमियों की कोई जरूरत नहीं है। ये प्रेरणा की जो बात करते हैं, उनकी जरूरत नहीं है। बीस लाख आदमी अगर खाली पैसा खा कर और खर्च करके ही प्रेरणा पाते हैं तो जितनी जल्दी दुनिया से इनका नामोनिशान मिटे अच्छा है। आखिर हैं तो बीस लाख ही। इस से ज्यादा नहीं है और इसीलिए मैं चाहता हूं कि कभी सोचें जो 50 करोड़ में से बाकी 20 लाख घटाने से बचते हैं 49 करोड़ 80 लाख, उन की प्रेरणा की बात भी तो सोचें। 50 करोड़ की या 49 करोड़ 80 लाख की प्रेरणाओं की बात नहीं सोचते। जो 15 सौ या चार सौ या दो सौ या आठ आने या चार आने या दो आने वाले हैं उन की प्रेरणाओं की बात भी तो सोचनी चाहिए। और इसलिए जब हीरों की चर्चा करते हैं, मैं नाम नहीं लूंगा, मेरे घर पर स्वतंत्रता वाले भी आये हैं और उन्होंने बताया है, बहुत बढ़िया बात बतायी है कि अपने देश में 8 हजार करोड़ रुपये की तो चांदी जमा है और 4 हजार करोड़ रुपये का सोना जमा है और हीरा कितने का है..(व्यवधान)..मैं बताता हूं कि हीरे के साथ जो और चीजें हैं वह मिला कर 15 हजार करोड़ रुपये का माल जमा है। जरा सोचें उस की तरफ । बेमतलब माल जमा हुआ पड़ा है। मैं चाहता

हूं कि भारत में विधि और कानून के जरिए ऐसी व्यवस्था और ऐसी संस्था कायम कर दें कि इस पन्द्रह हज़ार करोड़ रुपये को चांदी के रूप में, सोने के रूप में या हीरे के रूप में...(व्यवधान)...

अब इसलिए क्योंकि कुछ बातें गलतफहमी पैदा कर सकती हैं, डाक्टर सुशीला नायर वाली बात खास तौर से और औरों ने भी उस को यहां दोहराया है, जैसे कि मैं कोई लोगों को बरखास्त कराना चाहता हूं 20 लाख सरकारी नौकरों को बरखास्त करा देना चाहता हूं। यह बात मैंने नहीं कही थी। मैंने कहा था कि इनको कलम घिस्सु कामों से हटा कर के उपजाऊ कामों में लगाओ चाहे वह खेती के हों, सिंचाई के हों, कारखाने के हों, कलम घिस्सू कामों से हटाओ तो मेहरबानी कर के.....

लोगों ने कहा कि कुछ अपनी सरकारों में कुछ कर के दिखाओ । पहली बात तो यह है कि मेरी सरकार है नहीं। मेरी सरकार तो जब या तो श्री मोरारजी मेरे शिष्य बनें तब होंगी या यह लोग वहां पहुचें। इस के अलावा तो मेरी सरकार होने वाली नहीं है। और क्या तरीका कोई तीसरा बता रहे हो मोरारजी भाई? नहीं, सरकार तो मेरी है नहीं। लेकिन फिर भी मैं आप को बताऊं कि मेरे जितने भी मंत्री हैं जिन पर मेरा थोड़ा भी असर चलता है मैं उन से कहा करता हूं कि पुलिस वाले तुम्हारे साथ चलते हैं, पहरा देते हैं, किसी दूसरी जगह जब तुम जाते हो तो वह तुम को सलामी देते हैं, क्या तुम लंगुर बनाना चाहते हो? यह मैंने कई दफा भाषणों में कहा है और मुझे यह कहते हुए खुशी है कि हमारे यहां के कई मंत्रियों ने पुलिस का सम्पर्क छोड़ दिया है मैं कईयों को मोटरों के सम्पर्क से भी थोड़ा बहुत अलग करवा पाया हूं और उस के साथ-साथ कुछ ऐसी चीजें भी करवायी हैं....

एक गलती बड़ी भारी यह हो जाती है कि दो तरह के हिसाब एक साथ चलते रहते हैं। मोरारजी भाई समझते हैं कि एक लाख में से सिर्फ 8 हजार रुपया बचता है। एक लाख के बाद वाली सीढ़ी पर जब आमदनी कर लगता है लेकिन इधर दूसरी तरफ, मैं यहां वालों में से किसी का नाम नहीं लूंगा, वह लोग मुझ को बताते हैं कि कागज के ऊपर तो 8 हजार बचता है लेकिन असलियत में 50 हजार बचता है। आज यहां जितनी गलती हो रही है हिसाब लगाने में उस का कारण यह है कि कभी तो वह 8 हजार वाला हिसाब ले लेते हैं वित्त मंत्री महोदय जो कागज के ऊपर है और कभी वह 50 हजार रुपये वाला हिसाब दूसरे लोग ले लेते हैं जो कि असलियत में है। तो दोनों वस्तुओं से संबंध रखते हो। कागज वाले हिसाब को बिल्कुल खत्म कर दो।

इस के अलावा मुझे आप से यह कहना है कि कई दफा मुझे ताना मारते हैं स्वतंत्र

वाले भी और कम्युनिस्ट वाले भी कि तुम्हारे विचार तो यह हैं लेकिन तुम स्वतंत्र से लेकर के कम्युनिस्ट तक को कैसे इकट्ठा कर रहे हो? क्यों नहीं इकट्ठा करूं? और जब कांग्रेस भी हमारे जितनी छोटी रह जायेगी तो कांग्रेस को भी उस के साथ ले लेंगे। मैं नहीं चाहता कि यह विराट विशाल राक्षस अपने साथ ले लूं। वह तो हम लोगों को खा जायेगा। अगर बराबरी की पार्टियां हो जायेंगी तो कांग्रेस से भी मुझ को कोई जाती दुश्मनी नहीं है और यह याद रखना मुझको गुस्सा भी आता है तो खाली एक दिन दो दिन के लिए आता है। उस से ज्यादा नहीं आया करता। तो यह जो सब को इकट्ठा करने वाली बात है आप अच्छी तरह से अध्यक्ष महोदय, समझ चुके हैं कि अगर कोई ऐसी चीज है कि जिस में किसी का साथ मिल सकता है जैसे नौकरशाहों की फिजुलखर्ची में स्वतंत्र का साथ मिल सकता है और जहां बड़े पैसे वाले पूंजीपतियों के संचय में और खर्चे में कम्युनिस्टों का साथ मिल सकता है तो मैं कोशिश क्यों न करूं कि उन दोनों का साथ जब तक हो सके चले। फिर आखिर को तो कहीं न कहीं फैसला हो ही जायेगा। मैदान में चलते चलते पल्टन में कहीं न कहीं लोग छूट जायेंगे कोई परवाह नहीं। लेकिन अगर पल्टन चलती रही तो आखिर को अपनी मंजिल पर पहुंच कर के नया हिन्दुस्तान बनाएगी।